इकाई 2

आधे–अधूरे (मोहन राकेश)

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय

2.1 इकाई के उद्देश्य

2.2 नाटकों की विकास यात्रा

2.3 पात्र परिचय

2.4 व्याख्यात अंश

2.5 चरित्रचित्रण

- 2.5.1 महेंद्रनाथ
- 2.5.2 अशोक
- 2.5.2 सावित्री
- 2.5.3 बिन्नी

2.6 आलोचना

- 2.6.1 कथानक
- 2.6.2 अभिनेयता
- 2.6.3 प्रयोगधर्मिता
- 2.6.4 भाषा शैली

2.7 आधे–अधूरे : आधुनिकता

2.8 सारांश

2.9 मुख्य शब्दावली

2.10 'अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

मोहन राकेश ने 1968 में आधे–अधूरे नाटक का प्रणयन किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति के संघर्ष, टूटते परिवार, तनाव एवं द्वंद्व को जीवंत करने वाला यह अद्‌भुत नाटक है। स्त्री–पुरुष के मन की अतृप्ति एवं अधूरापन उन्हें किस तरह पथभ्रष्ट करता है, रिश्तों में आई दरार और पतित होते युवा वर्ग को दर्शाकर मोहन राकेश मध्यवर्गीय परिवार की जीवंत झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

2.1 इकाई के उद्देश्य

टिप्पणी

आधे–अधूरे नाटक को पढ़कर विद्यार्थी

मध्यवर्गीय परिवार के अभावों एवं संघर्ष को जानेंगे;

अति महत्त्वाकांक्षा के चलते स्त्री के पतन एवं परिवार की बर्बादी का साक्षात्कार करेंगे;

युवा पीढ़ी के पथ भ्रष्ट होने के कारणों से अवगत होंगे;

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में रिश्तों के नवीन स्वरूप का बोध करेंगे।

2.2 नाटकों की विकास यात्रा

हिंदी नाटक का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु एवं उनके सहयोगियों ने गद्य के माध्यम से हिंदी साहित्य को सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। निबंध इसमें अग्रणी था। हिंदी नाटक को प्रेरणा पश्चिम से नहीं बल्कि भारतीय भाषा बंगला के नाटकों 'कुलीन कुलसर्वस्व' (रामनारायण तर्करत्न), नील दर्पण (दीन–बंधु मित्र) आदि से प्राप्त हुई। 1857 की असफल क्रान्ति भी हिंदी नाटक का प्रेरणास्रोत थी। इन नाटककारों ने विदेशी शासन से संघर्ष के पूर्व अपनी सामाजिक दुर्बलताओं से संघर्ष करना आवश्यक समझा है। यही कहा जा सकता है कि हिंदी नाटक संघर्ष की मानसिकता की उपज है।

हिंदी नाटक के संघर्ष के क्षेत्र दोहरे थे। एक ओर वह पारसी व्यावसायिक रंगमंच की भ्रष्ट किंतु लुभावनी परंपरा से संघर्षरत था दूसरी ओर उसे अपने समाज की आंतरिक विकृतियों और अन्यायों से मुकाबला करना पड़ रहा था। पारसी व्यावसायिक रंगमंच से निपटने के लिए उसे मंच–विधान को गौण बनाकर कथ्य को प्रधानता देने की आवश्यकता थी। लोक–नाट्य मंच ने इसका रास्ता सुझाया। कथ्य को प्रधानता देते समय दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के भी प्रयास किए गए। आमतौर पर इस काल के नाटकों में समाज की आंतरिक विकृतियों तथा अन्यायों के विरूद्ध संघर्ष करने के उपरांत ही, भारतीय जन की निराशा को दूर कर, आदर्शों के लिए संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करने का उद्देश्यपूर्ण समाज चिंतन साफ पहचान में आता है। लोक–नाट्य में यह समय सबसे अधिक समाज सुधार के स्वर लेकर चलता है। आंतरिक विकृतियों तथा अन्यायों से मुक्त समाज विदेशी शासन के विरूद्ध अधिक सक्रिय और सफल संघर्ष कर सकता था इसलिए इस समय के नाटक एक सबल सामाजिक संरचना में प्रयासरत देखे जा सकते हैं। धार्मिक कुरीतियों, सामाजिक अन्यायों, अशिक्षा और अंधविश्वासों के विरूद्ध जेहाद में इन नाटककारों को व्यंग्य सबसे कारगर हथियार के रूप में दिखाई दिया।

भारतेन्दु युगीन नाटकों में व्यंग्य की प्रहार क्षमता में विश्व–नाट्य साहित्य में किसी से कमजोर नहीं है। बाद में कलापूर्ण तथा साहित्यिक दृष्टि से उत्तम नाटकों में भी यह क्षमता कम नहीं हुई। डॉ॰ रामविलास शर्मा के अनुसार, ''वास्तव में ऐसा सजीव और यह चेतन युग हिंदी साहित्य में एक बार ही आया है।'' भारतेन्दु युगीन नाटकों में पहला मौलिक नाटक भारतेन्दु बाबू का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873 ई0) मूलतः एक व्यंग्य प्रधान

नाटक है। इसमें धार्मिक अंधविश्वासों तथा सामाजिक कुरीतियों पर कड़े व्यंग्य प्रहार किए गए हैं। संस्कृत के प्रहसन एकांकी होते थे तथा उनमें सामाजिक चेतना कदाचित ही रहती थी। भारतेन्दु का प्रहसन चार अंकों का है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र पारम्परिक शैली के प्रहसन के बजाय युगीन आवश्यकता के अनुकूल रचना का उद्देश्य लेक चलते हैं। इसमें उन्होंने व्यंग्य से रचनायात्रा आरंभ की। भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने परवर्ती रचनाओं में भी अपने इसी संकल्प को अभिव्यक्ति दी है। भारतेन्दु युगीन प्रहसन वस्तुगत एवं शिल्पगत दोनों दृष्टियों से नया है तथा यह पहले कहे गए दुहरे संघर्ष की उपज है।

भारतेन्दु का नाटककार मित्र–समुदाय उनके निर्देश पर सामाजिक प्रश्नों को अपने नाटकों के माध्यम से उठाता है। प्रायः उनकी चेष्टाएँ गंभीर ही रही हैं किंतु दो–तीन नाटककारों ने व्यंग्य की प्रहार क्षमता को पहचान उसके कुशल उपयोग किए हैं। इन नाटककारों में पं0 देवकीनन्दन त्रिपाठी सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। त्रिपाठी जी ने जनेऊ (1886ई.) और कलियुगी–विवाह (1892 ई.) प्रमख हैं। इसी दौरान पं0 प्रतापनारायण मिश्र का 'जुआरी खुआरी' सामान्य स्तर पर किन्तु लोकप्रिय व्यंग्य–नाटक था। पं0 राधाचरण गोस्वामी ने ऐतिहासिक नाटकों के साथ–साथ अच्छे व्यंग्य–नाटक भी लिखे। राधाचरण गोस्वामी के एकांकियों में 1887 में प्रकाशित 'बूढ़े मुंह मुंहासे', 1890 में प्रकाशित 'सती चंद्रावली' तथा 'तन–मन–धन श्री गुसाई जी के अर्पण', 1892 में प्रकाशित 'भंगतरंग', 1894 में प्रकाशित 'अमरसिंह राठौर' तथा 1904 में प्रकाशित 'श्रीदामा' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी मुख्य विशेषता इनमें निहित हास्य–व्यंग्य प्रधान दृष्टिकोण है जिसके मूल में सुधारपरक दृष्टिकोण विद्यमान है। 'बूढ़े–मुंह मुंहासे', 'तन–मन–धन गुसाई जी के अर्पण' तथा 'भंग तरंग' शीर्षक प्रहसनों में व्यंग्य भावना मुखरित हुई है। धर्म का जो विकृत रूप तत्कालीन समाज में व्याप्त था उसका चित्रण भी इनकी रचनाओं में हुआ है। मिथ्या प्रदर्शनों का ढोंग करने वाले पात्रों का चित्रण भी इनकी रचनाओं में मिलता है। समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति तीव्र विरोध की भावना इनकी रचनाओं में मिलती है। इन व्यंग्य नाटकों के अनेक सफल मंचन किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। राधाचरण गोस्वामी इस अर्थ में अत्यंत श्लाघनीय हैं कि उन्होंने अपने समाज, गोस्वामी समाज के अनाचारों को निर्ममता से उद्घाटित कर एक विद्रोही समाज सुधारक की भूमिका का निर्वाह किया है।

भारतेन्दु युगीन व्यंग्य नाटकों में शिल्प कौशल की अपेक्षा कथ्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। इस वजह से इनमें नाट्य–प्रहार–क्षमता विलक्षण है। पश्चिमी देशों में इब्सन, गार्ल्सवर्दी और बर्नार्ड शॉ के नाटकों में व्यंग्य का जो पैनापन दिखाई देता है भारतेन्दु युगीन व्यंग्य नाटकों की धार उससे अधिक है।

द्विवेदीयुगीन साहित्य सोद्देश्यता को गंभीर मुद्रा में बांधकर चलता है। उल्लेखनीय है कि इस काल के दो दशकों में नाट्य रचना अत्यंत मंथर गति से हुई। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नाटक 'महात्मा ईसा' और माखनलाल चतुर्वेदी के पौराणिक नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय नाट्यकृति इस दौरान दिखाई नहीं देती। यद्यपि अनेक नाटक लिखे गए किंतु उनमें भारतेन्दु युगीन पैनापन और आक्रामकता नहीं है। भगवती प्रसाद का 'वृद्धविवाह' (1905 ई.), रूद्रदत्त शर्मा का 'कण्ठी जनेऊ विवाह' (1906 ई0), हरिशंकर शर्मा का 'बुढ़ऊ–विवाह' (1909 ई0), बद्रीनाथ भट्ट का 'हिंदी की खींचातानी' (1916 ई0) तथा 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1919 ई0) जैसे नाटक इस दौरान चर्चित एवं लोकप्रिय रहे। यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युगीन नाटकों की तरह इस युग में भी स्त्री की अस्मिता एवं विवाह जैसे प्रश्न महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं।

जी. पी. श्रीवास्तव के नाटकों में हास्य ही प्रमुख तत्त्व है। व्यंग्य तो उनमें यदा–कदा ही दिखाई देता है। 'मार–मार कर हकीम' तथा 'मरदानी औरत' जैसे नाटक तो प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटककार मौलियर के नाटकों के रूपान्तरण ही हैं। इसीलिए उनमें भारतीय सामाजिक प्रश्न उस तरह उभरकर नहीं आते जिस तरह मौलिक नाटकों में उभरते हैं। दूसरी विचारणीय बात यह है कि द्विवेदीयुगीन अनुशासनों में बंधे नाटककारों के व्यक्तित्व वैसे कुंठाहीन नहीं हैं जैसे कि भारतेन्दु बाबू तथा उनके मंडल लेखकों के हैं। व्यंग्य लेखन के लिए अपेक्षाकृत अधिक

उन्मुक्त व्यक्तित्त्व की आवश्यकता होती है। इसलिए द्विवेदी युग व्यंग्य रचना की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम उर्वरयुग दिखाई देता है।

द्विवेदीयुगीन के पश्चात लगभग दो दशक भावात्मक आदर्शवाद के वर्ष हैं। जयशंकर प्रसाद के श्रेष्ठ नाटक द्विवेदी–युग के समाप्त होने के बाद ही लिखे गए। प्रसाद मूलतः भावुक और अपेक्षाकृत अधिक एकान्तप्रिय व्यक्ति थे। उनके नाटकों में सांस्कृतिक अभियान प्रमुख हैं, यद्यपि इनके माध्यम से प्रसाद जी अंततः अपने युग से ही जुड़े हैं। गंभीर दार्शनिक विवेचन, काव्यात्मक तथा अनुभूति संपन्न उक्तियों की इन नाटकों में प्रचुरता है। इस कारण से इन नाटकों में गंभीरता है तथा व्यंग्य के लिए अनुकूल परिस्थितियों की कमी है। तब भी प्रसाद यदा–कदा अपने देश और समाज में व्याप्त अनाचारों से व्यथित होकर गंभीर चिंतन व्यक्त करते हैं।

1927 में 'कामना' में प्रसाद जी भौतिक संपत्ति के पीछे पागलपन का चित्रण करते हुए व्यंग्य का प्रयोग करते हैं। वे लिखते हैं, 'लाल रक्त गिराने से पीला सोना मिलने लगा, कैसा अच्छा खेल है?' 1929 ई. में रचित 'अजातशत्रु' यद्यपि एक गम्भीर नाटक है तब भी सूक्ति रूप में व्यंग्य की उपस्थिति यहाँ प्राप्त होती है। वे एक स्थान पर लिखते हैं– 'मेरी समझ में मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।' 'स्कंदगुप्त' जैसी गंभीर नाट्यकृति में प्रसाद जी की अधिक आक्रामक वृत्ति देखने को मिलती है।

'चन्द्रगुप्त' (1931) गंभीर ऐतिहासिक नाटक है तथा सिकन्दर से स्वार्थवश संधि करनेवाले आम्भीक के देशद्रोह से क्षुब्ध सिंहरण अनेक व्यंग्य प्रहार करता है। क्रुद्ध आम्भीक खड़ग निकालता है तब चन्द्रगुप्त उसे कोश में रखने को कहता है। इस पर सिंहरण व्यंग्य करता है, ''वह तो स्वर्ण से भर गया है।'' नन्द से अपमानित चाणक्य ने नन्द के सर्वनाश तक शिखा न बांधने की प्रतीज्ञा की थी। जब नन्द का पराभव होता है तब बन्दी नन्द को चाणक्य अपनी खुली हुई शिखा दिखाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस अवसर पर भी चाणक्य नन्द को क्षमा करने के लिए भरपूर प्रयास करता है। यहाँ नाटक में दर्शित व्यंग्य में प्रतिहिंसा का भाव नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' में अन्यत्र भी प्रसाद हल्के व्यंग्यों का उपयोग करते हैं, किन्तु क्या यह स्मरणीय नहीं है कि इनमें से एक भी विदेशी यूनानी संस्कृति के प्रति है। प्रसाद जी 'चन्द्रगुप्त' में व्यंग्य का उपयोग अपने ही समाज के दुष्ट आचरण में संलग्न व्यक्तियों को अनावृत करने के लिए करते हैं अथवा सही काम करने में हिचकिचाहट प्रदर्शित करने वाले को निःशंक करने के लिए करते हैं। यह व्यंग्यपूर्ण भर्त्सना संबंधित व्यक्ति को उत्तेजित कर उसको हिचक से मुक्त करती है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के परिणय के लिए पुरोहित बनने में कात्यायन की हिचक दूर करने के लिए चाणक्य भर्त्सनापूर्ण व्यंग्य का प्रयोग करता है। प्रसाद सर्वत्र अपने व्यंग्य का सोद्देश्य उपयोग करते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक संक्षिप्त होते हुए भी तीखे व्यंग्य की झलक दिखाता है। लगभग सभी व्यंग्य ध्रुवदेवी की असहाय स्थितियों के चित्रण के समय प्रयुक्त हैं। अपने अंतिम दो नाटकों 'चन्द्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद अधिक निर्मम दिखाई देते हैं। इसीलिए इन दो नाटकों में व्यंग्य की धार अधिक प्रखर दिखाई देती है। पूर्ववर्ती नाटकों में प्रसाद का रचनात्मक व्यक्तित्व अपेक्षाकृत गम्भीर तथा ऐकांतिक लगता है, जबकि अंतिम दो नाटकों में उनका दृष्टिकोण अधिक सामाजिक तथा खुला हुआ लगता है। उनकी पूर्ववर्ती मान्यता–''संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्–संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है।'' कालान्तर में प्रसाद रचना धर्मिता अधिक मुखर हैं। फिर भी प्रसाद जी ने किसी भी अवसर पर पूर्ण आक्रामकता को स्वीकार नहीं किया। अपने सम्पूर्ण रचना कार्य में वे कहीं भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान निर्मम नहीं हो पाते। कैसी अद्‌भुत बात है कि हिंदी के सबसे बड़े नाटककार ने व्यंग्य को विशेष महत्त्व नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि समाज परिवर्तन का सबसे अधिक धारदार और कारगर अस्त्र जो कि भारतेन्दुयुगीन नाटकों की मुख्य स्पिरिट था, कोने में जंग खाने को पटक दिया गया। साहित्यिक दृष्टि से भले हिंदी नाटक शिखर पर जा पहुँचा किन्तु अन्याय, शोषण और विद्रूप के विरूद्ध जारी संघर्ष में उसका रवैया उदासीन ही दिखाई देता है।

प्रसादोत्तर युग में संभवतः एकांकी नाटकों की विकास गति तीव्रत्तम है। यद्यपि आरम्भिक एकांकियों में सामाजिक चेतना के स्वर तीव्र नहीं हैं किन्तु शीघ्र ही वे गुरु गंभीर होते नजर आते हैं। प्रारम्भ में भुवनेश्वर के, कुंठाग्रस्त मानसिकता और बिखराव के शिकार व्यक्तियों के निरूपक एकांकी कलात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम थे। इसी समय प्रसाद की नाट्यशैली की छाया लिए रामकुमार वर्मा के एकांकी अपनी भावुक शैली के लिए चर्चित हो रहे थे। यही समाज सुधार की पूर्व पीठिका से प्रभावित एकांकियों का समय आरम्भ होता है। शीघ्र ही उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भगवतीचरण वर्मा और सत्येन्द्रशरद के सोद्देश्य एकांकी नाट्य–प्रेमियों को प्राप्त होते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् हुए सबसे महत्त्वपूर्ण नाटककारों में मोहन राकेश का नाम नए हिंदी नाटक की सुदृढ नींव रखने वालों में लिया जा सकता है किंतु जहाँ तक उनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रवृत्तियों का प्रश्न है, निःसंकोच हम कह सकते हैं कि वे अत्यंत सूक्ष्म हैं। मोहन राकेश के तीन पूरे तथा एक अधूरे (पैरों तले जमीन) नाटकों में से दो 'अषाढ़ का एक दिन तथा 'आधे–अधूरे 'ट्रैंड–सैंटर कहे जा सकते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' (1985) में व्यंग्य बहुत ही सूक्ष्म हैं। कालिदास से विपरीत चरित्र विलोम द्वारा कालिदास के चरित्र पर प्रश्न चिह्न ही नहीं लगता बल्कि उनके उदात्त चरित्र में निहित कमजोरियों पर व्यंग्य बन गया है। कालिदास अपने काव्य को महत्त्व दिलाने के लिए गांव तथा प्रेयसी मल्लिका को छोड़कर राजधानी जाता है। राजधानी काव्य–रचना के लिए नैसर्गिक वातावरण नहीं दे पाती। न ही उसकी काव्य–प्रेरणा मल्लिका की कमी को उसकी पत्नी पूरा कर पाती है। गाँव लौटने पर वह पाता है कि अभावों से परास्त उसकी काव्य–शक्ति की मूल प्रेरणा मल्लिका उसके विपरीत चरित्र विलोम को समर्पित हो चुकी है। मल्लिका की ट्रैजेडी कालिदास की महत्वाकांक्षा, उसके व्यक्तित्व, उसके समझौतों सभी पर एक गहरे व्यंग्य के रूप में उभरी है। कालिदास की महानता अन्ततः टूटे हुए कालिदास के द्वारा मानो व्यंग्य से ढ़क गई है।

जनवरी 1969 में प्रकाशित मोहन राकेश का नाटक 'आधे–अधूरे' पारिवारिक जीवन की एक बहुत बड़ी ट्रैजेडी को अंकित करता है। यह ट्रैजेडी न्यूनाधिक रूप में असंख्य जन की है। इस नाटक के सावित्री और महेन्द्र स्वयं में बहुत बड़े व्यंग्य बन गए हैं। सावित्री पौराणिक सावित्री से विपरीत है जो दूसरा पति करने के प्रयास में संलग्न है। महेन्द्रनाथ अपने नाम के ठीक विपरीत लुंज–पुंज व्यक्तित्त्व वाला चरित्र है। वैसे तो सभी प्राणी किसी न किसी रूप में आधे–अधूरे होते हैं। नायिक सावित्री भी ऐसी ही है किन्तु दूसरों के अधूरेपन पर, विशेषतः पति और बच्चों के अधूरेपन पर वह खीझती है। यहाँ व्यंग्य एक बिल्कुल अलग अंदाज लेकर सामने आया है। 'आधे–अधूरे' वस्तुतः लेखक का स्वयं पर किया गया व्यंग्य है। सावित्री जैसे खुद मोहन राकेश का परिवर्तित अहं (आल्टर ईगो) बन गई है। 'आधे–अधूरे' की ट्रैजेडी अतिरंजित रूप में ही सही हमारी सामाजिक मानसिकता पर किया गया व्यंग्य है। समाज के अभिन्न अंग के नाते स्त्री और पुरुष मूलतः एक दूसरे के पूरक होते हैं किन्तु पश्चिमी प्रभावों के कारण एक नयी विकृति भारतीय समाज में प्रतिफलित होती दिखाई देती है। वह है स्त्री–पुरुष के बीच निरंतर बढ़ता हुआ अविश्वास। स्त्री पुरुष को सुविधाएँ जुटाने वाला साथी मानने लगी है और पुरुष नारी को दैहिक संबंधों तक सीमित करने लगा है। सनातन पुरुष और सनातन नारी आपस में मिल ही नहीं पाते। 'आधे–अधूरे' का यह व्यंग्य समाज पर है जिसके अंग दोनों हैं। जब शरीर ही विकृत है तो अंग कैसे स्वस्थ होंगे। समाज में विकसित मानसिकता से अभिशप्त उसके सदस्य जब आत्म–केन्द्रित और असामाजिक बनते हैं तो समाज शब्द ही विकृत अथवा अर्थहीन हो जाते हैं। आज यही विडंबना विकसित होती दिखाई दे रही है।

प्रसादयुग से आज तक अनेक नाटककारों ने नाट्य रचना के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जैसे बद्रीनाथ भट्ट, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, गोविंद दास, सुदर्शन, लक्ष्मीनारायण लाल, हमीदुल्ला, सुरेन्द्र वर्मा, शरद जोशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मणि मधुकर, भुवनेश्वर, धर्मवीर भारती आदि। नाटकों ने सामाजिक परिवर्तन में

निरंतर महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है और करते रहेंगे। जैसे–जैसे पाश्चात्य प्रभाववश सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए और हो रहे हैं। स्त्री–पुरुष संबंधों में, शिक्षा में, वर्ग वैषम्य में परिवर्तन हुए हैं, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में परिवर्तन हुए हैं। नाटककारों ने इन परिवर्तनों, इनके प्रभाव एवं परिणामों को अपने नाटक की कथा वस्तु बनाकर उसे प्रभावी तरीके से जन–साकान्य के सामने प्रस्तुत किया है। नाटकों में मंचन की सुविधा के कारण इसका उत्तरदायित्व अधिक बढ़ जाता है, औचित्य एवं अनौचित्य का ध्यान रखते हुए इसे समाज के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह समाज से सीधा संवाद स्थापित करने वाली विधा है। अतः सामाजिक सरोकारों को आत्मसात कर नाटककार इसे जीवंत अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। नाटकों का आकर्षण सदैव बना रहा है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ इसके परिवर्तित तेवरों, रूप–रंग, प्रस्तुति इसे और अधिक आकर्षक, प्रासांगिक और उपयोगिता पूर्ण बनाते रहेंगे। नाटकों के अनेक प्रकार हैं– ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक आदि। सभी अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ पठनीय और उपयोगी होते हैं। आधुनिक नाटककारों ने हर तरह के नाटकों की रचना की है और कर रहे हैं।

2.3 पात्र–परिचय

पुरुष एक	–	महेन्द्रनाथ (सावित्री का पति)
पुरुष दो	–	सिंघानिया
पुरुष तीन	–	जगमोहन
पुरुष चार	–	जुनेजा
स्त्री	–	सावित्री
बड़ी लड़की	–	बिन्नी
छोटी लड़की	–	किन्नी–सावित्री एवं महेन्द्रनाथ के तीन बच्चे
लड़का	–	अशोक

पुरुष एक के रूप में महेन्द्रनाथ : पतलून–कमीज। जिन्दगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष दो के रूप में सिंघानिया पतलून और बन्द गले का कोट। अपने आपसे संतुष्ट, फिर भी आशंकित। पुरुष तीन के रूप में जगमोहन–पतलून–टीशर्ट। हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव–भाव में। पुरुष चार के रूप में जुनेजा पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट पहने। चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास। काइयांपन।

स्त्रीः उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरूचिपूर्ण।

बड़ी लड़कीः उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी–कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी : माँ से साधारण : पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।

छोटी लड़की : उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर चाल–हर चीज में विद्रोह : फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सूराख।

लड़का : उम्र इक्कीस के आस–पास। पतलून और अन्दर दबी भड़कीली बुश्शर्ट धुल–धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहाँ तक कि हंसी से भी, झलकती खास तरह की कड़वाहट।

2.4 व्याखाएँ

पुरुष एक : वह छः महीने बाहर रहकर आया है। जो सकता है, कोई नया कारोबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए.....

स्त्री : तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या–क्या करेगा वह जिन्दगी में! पहले ही कुछ कम नहीं किया है। इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में! पता नहीं कहाँ से चली आती है।

पुरुष एक : तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ से हमेशा मेरी मदद की है।

स्त्री : न करता मदद, तो उतना नुकसान तो न होता जितना उसके मदद करने से हुआ है।

पुरुष एक : (कुढ़कर सोफे पर बैठता) तो नहीं जाता मैं! अपने अकेले के लिए जाना है मुझे! अब तक तकदीर ने साथ नहीं दिया तो इसका यह मतलब तो नहीं कि....।

स्त्री : यहाँ से उठ जाओ! मुझे झाड़ लेने दो जहा। उस कुर्सी पर चले जाओ, वह साफ हो गई है। (बड़बड़ाती) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही लगह लमाखर्च। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दिया, तुम्हारा नहीं दिया।

पुरुष एक : (गुस्से से उठता है), तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे....।

स्त्री : खड़े क्यों हो गए?

पुरुष एक : क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता?

स्त्री : (हलका वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अन्दर ही।

संदर्भ – प्रस्तुत संवाद मोहन राकेश के नाटक आधे–अधूरे से लिया गया है।

प्रसंग – यहाँ पुरुष एक के रूप में महेन्द्रनाथ तथा स्त्री के रूप में उसकी पत्नी सावित्री के बीच जुनेजा नामक मित्र को लेकर तीखी झड़प हो रही है जिसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या:

महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री से कहता है कि उसका मि जुनेजा जो कारोबार के सिलसिले में बाहर गया था, छह महीने बाद लौटकर आया है। हो सकता है कि वह किसी नए कारोबार के संबंध मे कोई योजना बना रहा हो जो मेरे लिए भी लाभदायक हो, तो मैं उससे मिलने जा रहा हूँ। सावित्री–जुनेजा से नफरत करती है वह सोचती है कि जुनेजा अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर उसके पति से काम निकलवाता है, उसका शोषण करता है और उसे ऐसी शिक्षा देता है कि वह अपने घर–परिवार को महत्त्व न दे। सावित्री का मानना है कि जब कारोबार में लाभ होता है तो वह जुनेजा को रखता है और उसके पति को बराबर का हिस्सेदार होने पर भी उसका हिस्सा नहीं मिलता। इसलिए वह जुनेजा से मिलने जाते हुए पति पर व्यंग्य करती है कि आओ उसे देने के लिए पैसे नहीं हैं, बेरोजगार बैठे हो तो कम से कम उसे मुँह दिखा ही सकते हो। महेन्द्रनाथ कहता है कि तुम उस आदमी से बेवजह चिढ़ती हो उसने मेरी बहुत मदद की है। सावित्री बातें करते हुए कुर्सियाँ साफ करती जाती है और बड़बड़ाती है कि इस घर में इतनी गर्द हर वक्त भरी रहती है, पता नहीं कहाँ से आती है, यह गर्द घर घर में चौबीसों घंटे चलने वाले कलह और तनाव का प्रतीक है। सावित्री कहती है कि जुनेजा को तुम मददगार कहते हो लेकिन उसने अगर मदद न की होती तो अच्छा होता, उसके मदद करने से अधिक नुकसान हुआ है। महेन्द्रनाथ कुढ़ता हुआ बैठ जाता

है और कहता है मैं अपने लिए उसके पास नहीं जा रहा था। किसी व्यवसाय की बात करने जा रहा था ताकि तुम सब के लिए कुछ कर सकूं। पहले जो भी नुकसान हुआ भाग्य का लिखा था वही घटा। सावित्री कहती है – पहली बार प्रेस में जो हुआ उसे भाग्य माना जा सकता है लेकिन दूसरी बार तो सरासर बेईमानी थी। एक ही फैक्टरी थी, तुम दोनों ने बराबर पैसा लगाया। फिर तकदीर ने उसका साथ दिया तुम्हारा नहीं यह कैसे हो सकता है? वह झाड़न से कुर्सी साफ करती हुई महेन्द्र के पास पहुँचती है तो वह खड़ा हो जाता है – वह कहती है – खड़े क्यों हो गए? वह चिढ़ कर कहता है– क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता? तब सावित्री व्यंग्य पूर्ण स्वर में कहती है– तुम केवल घर के अंदर खड़े हो सकते हो, बाहर नहीं। अर्थात् तुम घर में पुरुषार्थ का प्रदर्शन करते हो लेकिन बाहर जाकर हर बात में जुनेजा का सहारा लेते हो, स्वयं निर्णय लेने की शक्ति तुममें नहीं रहती। पत्नी–पति के बीच की बहस को राकेश जी ने जीवंत प्रस्तुति दी है।

2 स्त्री : वजह का पता तुम्हें होगा या तुम्हारे लड़के को। वह भी तीन–तीन दिन दिखाई नहीं देता घर पर।

पुरुष एक : तुम मेरा मुकाबला उससे करती हो?

स्त्री : नहीं, उसका मुकाबला तुमसे करती हूँ। जिस तरह तुमने ख्वार की अपनी जिन्दगी, उसी तरह वह भी....।

पुरुष एक : और लड़की तुम्हारी? उसने अपनी जिंदगी ख्वार करने की सीख किससे ली है? (अपने जाने भारी पड़ता) मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।

स्त्री : (एकटक उसकी आंखों में देखती) तुम कहना क्या चाहते हो?

पुरुष एक : कहना क्या है? जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इस दृश्य में पति–पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर छींटाकशी कर रहे हैं।

व्याख्या : सावित्री अपने पति महेन्द्रनाथ से कहती है कि अब जुनेजा बाहर से लौट आया है तो फि पहले की ही तरह बिना बताए तुम तीन–तीन दिन के लिए घर से बाहर उसके साथ रहोगे ही। महेन्द्रनाथ सफाई देते हुए कहता है कि मैं अगर बाहर रहता भी हूँ तो उसका कोई कारण होता है, तुम जानती हो। सावित्री कहती है– कारण मैं नहीं जानती, तुम जानते हो या तुम्हारा बेटा क्योंकि वह भी घर से बिना बताए तीन–तीन दिन तक बाहर रहना सीख गया है। यह शिक्षा तुम्हारी ही है जिस पर चल कर वह तुम्हारी तरह ही अपनी जिंदगी बर्बाद कर लेगा। सावित्री का आरोप सुनकर महेन्द्रनाथ तिलमिला जाता है और कहता है– तुम मेरी बराबरी उस लड़के से कर रही हो? अर्थात् बेटा तो बच्चा है, गैर जिम्मेदार है, आवारागर्दी करता है और तुम उससे मेरी बराबरी कर रही हो। सावित्री कहती है– नहीं, तुम्हारी बराबरी उससे नहीं, उसकी बराबरी तुमसे कर रही हूँ, क्योंकि वह भी तुम्हारी तरह बर्बादी की राह पर चल रहा है। महेन्द्रनाथ कुढ़ जाता है और कहता है– ठीक है बेटा मेरी तरह बर्बाद हो रहा है, लेकिन बेटी के संबंध में तुम्हारी क्या राय है? वह भी तो तुम्हारे पद–चिन्हों पर चल रही है। मैंने बेटे को यह नहीं सिखाया कि किसी लड़की को लेकर भाग जा। तुम्हारी बेटी किसी लड़के के साथ भाग गई, उसे यह शिक्षा कहाँ से मिली? सावित्री तिलमिलाकर सवाल पूछती है तो महेन्द्रनाथ विवाद खत्म करने की दृष्टि से कहता है – इस संबंध में कुछ नहीं कहना है, जो है, तुम जानती हो।

जाओ चाय बना लाओ।

प्रस्तुत अंश में बाहरी दबाओं और परिस्थितिजन्य कुंठा से ग्रस्त पति–पत्नी के संबंध का संकेत है, साथ ही पूरे परिवार की व्यक्तिगत जटिलताओं तथा पारस्परिक संबंधों का भी। आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों और

विसंगतियों का भी। मोहन राकेश ने नाटक में आम आदमी की छवि को आम आदमी के तेवर भाषा एवं लहजे में उभारा है।

3. पुरुष एक : हांऽऽ सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मानते कि इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से।

पुरुष एक : मैं नहीं शुक्र मानता? जब–जब किसी नए आदमी का आना–जाना शुरु होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था।

स्त्री : (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या–क्या बातें रह गयी हैं कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष एक : क्यों.... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए?

स्त्री : (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं....।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेन्द्रनाथ सावित्री और उसके बॉस सिंघानिया के बीच संबंधों को संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए सावित्री पर व्यंग्य कर रहा है।

व्याख्या : सावित्री ने कहा कि सिंघानिया आने वाला है वह मेरा बॉस है, बड़ा आदमी है लेकिन इतना भला है कि मेरे एक बार कहने पर ही घर आ रहा है। मैंने उसे इसलिए बुलाया है कि उससे संबंध बन जाएं तो वह लड़के की कहीं नौकरी लगवा देगा इसलिए तुम सब लोग उसके आने पर उसका स्वागत करो उससे मिलो। महेन्द्रनाथ व्यंग्यात्मक अंदाज में कहता है– हाँ, बेचारा सिंघानिया लड़के की नौकरी लगवाने के लिए ही तो यहाँ आता है, और कुछ नहीं। वैसे भी जिस नए व्यक्ति का घर में आना जाना आरंभ होता है मैं शुक्र ही मानता हूँ कि चलो एक और बड़ा आदमी इस घर में आने लगा। पहले जगमोहन आता था, फिर मनोज और सिंघानिया। सावित्री तिलमिलाकर कहती है कि और भी जो–जो कहना है कह डालो क्योंकि तुम अहसान फरामोश हो, मैं जिसको भी बुलाती हूँ तुम लोगों के भले के लिए बुलाती हूँ ताकि बड़े लोगों से संबंध बनाकर कुछ लाभ इस घर के लिए कमा सकूँ। लेकिन उसका आशय स्पष्ट है कि तुम संदेह करते हो तो मन करता है कि आज ही यह घर और तुम्हे छोड़कर उस आदमी अर्थात् सिंघानिया के साथ चली जाऊँ।

4. बड़ी लड़की: वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

पुरुष एक : (उस ओर देखकर) क्या कहा.....हवा?

बड़ी लड़की: हाँ, हवा।

पुरुष एक : (निराश भाव से सिर हिलाकर, मुंह फिर दूसरी तरफ करता) यह वजह बतायी है इसने..... हवा।

स्त्री : (बड़ी लड़की के चेहरे को आंखों से टटोलती) मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की: (उठती हुई) मैं शायद समझा नहीं सकती (अस्थिर भाव से कुछ कदम चलती) (सहसा रूककर) ममा, ऐसा भी होता है क्या कि.....?

स्त्री : कि?

बड़ी लड़कीः कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक–दूसरे से अजनबी महसूस करें।

संदर्भ – पूर्ववत

प्रसंग – बड़ी लड़की बिन्नी अपने पति के घर से अचानक मायके आ गई है। सावित्री और महेन्द्रनाथ को संदेह है कि यह बार–बार पति से लड़ कर यहाँ आती है, इसलिए वे उससे अचानक आने का कारण पूछते हैं और बिन्नी अपने अंदाज में उत्तर देती है।

व्याख्या – सावित्री पूछती है बिन्नी से – ऐसी क्या वजह है कि तू बार–बार पति को छोड़कर यहाँ भाग आती है। विवाह तो तूने उसके (मनोज) के साथ भागकर अपनी इच्छा से किया है फिर क्या समस्या है। माता–पिता द्वारा तय किए गए रिश्तों से समस्या हो सकती है। क्योंकि लड़का–लड़की एक दूसरे को पहले से जानते नहीं हैं लेकिन बिन्नी ने मनोज के साथ भागकर शादी की, फिर क्या वजह है कि वह उसे छोड़कर यहाँ आए। बिन्नी कहती है–मनोज से उसे शिकायत नहीं है। वह इच्छा पति है, प्रेमी है उसका ध्यान रखता है लेकिन कुछ है हमारे बीच कि हम कुछ देर साथ रहने के बाद असहज हो जाते हैं। हमारे बीच से गुजरने वाली 'हवा' ही वह वजह है अर्थात् हमारे बीच का कुछ अनजाना सा तत्त्व। वह माँ से कहती है कि क्या ऐसा होता है कि दो लोग जितना अधिक एक–दूसरे के साथ रहें, एक हवा में साँस लें उतना ही ज्यादा वे एक–दूसरे के लिए अजनबी बनते जाते हैं। माँ पूछती है क्या तुम दोनों ऐसा अनुभव करते हो? बिन्नी कहती है– कम से कम मैं तो करती हूँ। तात्पर्य यह कि पहले दूर–दूर रहकर दो लोग एक दूसरे के प्रति आकर्षित तो होते हैं किंतु दूसरे के व्यक्तित्त्व को परिपूर्णता में नहीं जानते, साथ रहने पर दो व्यक्तित्त्व आपस में टकराते हैं जिसके कारण वे दूसरे से दूर होते जाते हैं। बिन्नी इसी द्वंद्व से गुजर रही है।

प्रस्तुत अंश में व्यक्तित्त्वों की टकराहट और अंतर्संबंधों की जटिलता को एक गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दिखाया गया है। व्यक्ति संबंध निभाना भी चाहता है लेकिन अपनी व्यक्तिगत सत्ता, अपनी अस्मिता से समझौता भी नहीं करना चाहता। आज के समाज के अनुधनिक व्यक्ति की यही विसंगति है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में व्यक्तिगत संबंधों की इसी जटिलता को बड़ी बारीकी से उभारा है।

5. बड़ी लड़की : पर कौन सी अड़चन? उसके हाथ में छलक गयी चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर–ये छोटी–छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती है। एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इन्तजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूँ। और आखिर....। आखिर वह सीमा आ जाती है जहाँ पहुंचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री : क्या?

बड़ी लड़कीः कि मैं इस घर से ही अपने अन्दर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री : (जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो) क्या चीज?

बड़ी लड़कीः मैं पूछती हूँ क्या चीज, तो उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री : वह क्या?

बड़ी लड़कीः कि इसका पता मुझे अपने अन्दर से या इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – उपयुक्त अंश एक आधुनिक विवाहिता स्त्री की दुविधा, उसकी अस्मिता और उससे की जाने वाली अपेक्षाओं के द्वंद्वों को व्यक्त करता है और टूटते हुए परिवारों की विसंगति को भी। प्रस्तुत व्याक्यांश में परिवार की बड़ी पुत्री जो पति का घर छोड़कर आ गई है, माँ से अपनी मनःस्थिति व अपने पति के बीच में आई दूरी का जिक्र कर रही है। लेखक ने यहाँ उसकी मानसिकता को माता–पिता के व्यक्ति संबंधों में आई दरारों और परिवार की कुंठाओं और क्लेश से भी जोड़ा है। सावित्री अपने बेटी बिन्नी से कहती है कि अगर तुम अपने पति के साथ रहते हुए भी अजनबी जैसा अनुभव करती हो तो इसके पीछे कोई अड़चन होगी। तब बिन्नी उत्तर देती है।

व्याख्या – बिन्नी सावित्री से कहती है कि कोई अड़चन या बाधा ऐसी नहीं है जिसके कारण हम पति–पत्नी के बीच के संबंध असहज हो जाते हैं। उसके हाथ से चाय छलक जाए या वह दफ्तर से आधा घंटा देर से आए ये तो छोटी–छोटी बातें हैं, ये अड़चन नहीं होती, लेकिन बन जाती है जिसका कारण मैं हूँ। इन छोटी–छोटी बातों को भी बहाना बनाकर मैं अपने भीतर का गुबार निकालती रहती हूँ क्योंकि कोई कारण न होने पर भी मेरे भीतर एक गुबार सा हर वक्त भरा रहता है और मैं बहाना या मौका ढूंढती रहती हूँ कि कब अपनी भड़ास मनोज पर निकालूँ और अंततः जब उसकी कोई कमी नजर नहीं आती तो ऐसे छोटे–छोटे कारणों को लेकर ही मैं उस पर बरस पड़ती हूँ। वह समझाता है लेकिन अंततः वह भी थककर हथियार डाल देता है, लेकिन ऐसे अवसरों पर वह यही कहता है कि– इसमें मेरी कोई गलती नहीं है – मेरे परिवेश की है कि मैं इस घर यानि मायके से ही कोई ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती। सावित्री को धक्का लगता है जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो क्योंकि वह जानती है कि आज जो उसका दामाद है बीते कल में उसका मित्र या प्रेमी था और वह उसकी असंतुष्ट प्रवृत्ति को जानता है। शायद यह अतृप्ति या असंतुष्टि ही वह चीज है जो न मुझे सहज रहने देती थी न उसकी बेटी को। लेकिन वह अपने मनोभाव छिपाकर पूछती है कि मनोज किस चीज का जिक्र करता है। बिन्नी कहती है– मुझे पता नहीं, मनोज भी नहीं बताता। कहता है कि वह चीज जो तुम्हें सहज, स्वाभाविक नहीं रहने देती उसका पता तुम्हें अपने अंदर से यानि अपने भीतर झाँकने से या अपने घर के संबंध में सोचने पर मिल सकता है। क्योंकि हर मनुष्य यह जानता है कि वह क्या है।

बड़ी लड़कीः क्योंकि मुझे नहीं लगता है कि...कैसे बताऊँ, क्या लगता है? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे मुझे अपने से अजब सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है....मन करता है, आसपास की हर चीज को तोड़–फोड़ डालूँ। कुछ ऐसा कर डालूँ जिससे....।

स्त्री : जिससे?

बड़ी लड़कीः जिससे उसके मन को कड़ी–से–कड़ी चोट पहुँचा सकूँ। उसे मेरे लंबे बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूँ, इन्हें जाकर कटा आऊँ। वह मेरे नौकरी करने के हक में नहीं है। इसलिए चाहती हूँ कहीं भी, कोई भी छोटी–मोटी नौकरी ढूँढकर कर लूँ। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नहीं पाती और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर..।

स्त्री : यहाँ चली आती है?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – मनोज जब हर बार बिन्नी से कहता है कि वह अपने घर से कोई ऐसी चीज लेकर आई है जो उसे स्वाभाविक, सहज नहीं रहने देती तो बिन्नी खिन्न होकर जो प्रतिक्रिया व्यक्त करती है उसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या – सावित्री बिन्नी से कहती है कि तुम मनोज से क्यों नहीं पूछतीं कि वह किस चीज के संबंध में बात कर रहा है। तब बिन्नी कहती है कि मुझे नहीं लगता कि मनोज गलत कह रहा है क्योंकि मुझे भी ऐसा लगता है कि कुछ है ऐसा मेरे भीतर जो मुझे सहज वातावरण में भी सहज नहीं रहने देता। वह जितने विश्वास से यह बात कहता है उस पर अविश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि मुझे अपने–आपसे चिढ़ होने लगती है। लगता है अपने आस–पास की हर चीज नष्ट कर दूँ, तोड़ फोड़ दूँ कुछ ऐसा करूँ कि मनोज दुखी हो, परेशान हो, उसके मन को चोट पहुँचे वह भी मेरी तरह असहज हो जाए तो मुझे चैन मिले। मैं हर काम उसकी इच्छा के विरूद्ध करना चाहती हूँ ताकि वह चिढ़े, दुखी हो। उसे मेरे लम्बे बाल पसंद हैं, इसलिए चाहती हूँ इन्हें कटवा दूँ ताकि उसके मन को आघात लगे, वह मेरा नौकरी करना पसंद नहीं करता इसलिए लगता है कि कोई भी छोटी–मोटी नौकरी करने के लिए घर से निकलूँ ताकि वह दुखी हो। मेरे सामने हार जाए। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर पाती इसलिए खीझकर यहाँ चली आती हूँ।

यहाँ कुछ विशेष प्रकार की अधिसंख्य स्त्रियों की उस मनोवृत्ति को प्रकट किया गया है जहाँ वे छोटी–मोटी बातों को लड़ाई का बहाना बनाती हैं और पति को नीचा दिखाने का प्रयास करती है।

7. बड़ी लड़की: मेरा अपना घर... हाँ। और मैं आती हूँ। कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर से जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा कि कया चीज है वह? और कहाँ है वह? इस घर के खिड़कियों–दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी मैं? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अन्दर लेकर गयी हूँ? (स्त्री की दोनों बांहें हाथ में लेकर) बताओ ममा, क्या है वह चीज? कहाँ पर है इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – बिन्नी सावित्री से कहती है कि मैं इस घर में बार–बार इसलिए आती हूँ ताकि मनोज के कथानानुसार उस चीज को ढूंढ सकूँ जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती।

व्याख्या – बिन्नी सावित्री से कहती है कि हर बार पति के सामने मन का गुबार निकाल कर मुझे यही सुनना पड़ता है कि मैं इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती तब मैं लड़कर यहाँ आती हूँ। अपने घर में बार–बार आती हूँ यह खोजने कि वह चीज क्या है? कहाँ है? जिसका उल्लेख करके मनोज बार–बार मुझे नीचा दिखाता है, हीन साबित करता है। बिन्नी दुखी, उदास होकर कहती है तो लगता है वह भीतर से टूट चुकी है। वह माँ से पूछती है कि बताओ वह चीज क्या है? कहाँ है? इस घर के खिड़की दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममे? डैडी है बिन्नी और अशोक में? कहाँ है? किसमें छिपी है वह मनहूस, अशुभ चीज भाव या तत्त्व जिसे अपने साथ लेकर मैं यहाँ से गई हूँ? वह माँ का हाथ पकड़कर झकझोरते हुए जिद करती है कि वह उस चीज का पता बताए ताकि उस चीज का पता लगते ही वह उसे नष्ट कर अपने गृहस्थ जीवन को सुखी बना सके। वह नहीं जानती कि असंतुष्ट, अतृप्ति, असंतोष ही वह चीज, भाव, या संस्कार हैं जो वह अपनी माँ से इस घर से लेकर गई है जो उसे असहज बनाये रखते हैं। यह सारी परिस्थिति उन महिलाओं के क्षुद्र भावों की ओर संकेत करती है जिनके मूल में उनके पैतृक परिवार की, पीहर का परिवेश काम कर रहा होता है।

8. पुरुष एक : किसे सुना सकता हूँ? कोई है जो सुन सकता है? जिन्हें सुनना चाहिए, वे सब तो एक रबड़–स्टैंप के सिवा कुछ समझते नहीं मुझे। सिर्फ जरूरत पड़ने पर इस स्टैंप का ठप्पा लगाकर...।

स्त्री : यह बहुत बड़ी बात नहीं कह रहे तुम?

लड़का : (उसे रोकने की कोशिश में) ममा.....!

स्त्री : मुझे सिर्फ इतना पूछ लेने दे इनसे कि रबड़–स्टैंप के माने क्या होते हैं? एक अधिकार, एक रुतबा, एक इज्जत–यही न?

पुरुष एक : किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़–स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत

प्रसंग – महेन्द्रनाथ अपनी उपेक्षा से पीड़ित होकर पत्नी, बच्चों के सामने निम्न पंक्तियों में अपने मन का गुबार निकाल रहा है।

व्याख्या – महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री और बच्चों के सामने जोर–जोर से कहता है कि कितने साल का हो गया मैं? कितने साल से परिवार की देखरेख कर रहा हूँ लेकिन इस घर में हर कोई मेरी उपेक्षा करता है, मुझ पर व्यंग्य करता है मेरा यहाँ कोई सम्मान है या नहीं? उसकी बात सुनकर सावित्री चिढ़ कर कहती है कि यह रोना किसे सुना रहे हो? तब सावित्री की बात का उत्तर देते हुए महेन्द्रनाथ कहता है कि किसे सुनाऊँगा? इस घर के लोग मुझे केवल रबर स्टैंप समझते हैं। जैसे किसी कागज को, लेख को प्रमाणित करना हो तो लोग रबर स्टैंप निकालकर संबंधित अधिकारी या कार्यालय की सील लगा देते हैं फिर रबर स्टैंप को टेबल या आलमारी के किसी कोने में लापरवाही से डाल देते हैं। स्टैंप लगाते ही कागज मूल्यवान हो जाता है, लेकिन जिस स्टैंप ने इस कागज को मूल्यवान और अस्तित्त्ववान बनाया उसको उपेक्षित पड़ा रहने देते हैं। महेन्द्रनाथ का यही तात्पर्य है कि पिता हैं और पति हैं यह प्रमाणित करने के लिए ही उसका अस्तित्त्व है, वरना कोई उसे सम्मान नहीं देता। सावित्री चिढ़ कर कहती है कि रबर स्टैंप का मतलब–एक रुतबा, एक इज्जत, एक अधिकार है, लेकिन यह सब घर के लोगों को इन्होंने कब दिया? तात्पर्य यह है कि तुम रबर स्टैंप भी नहीं हो। महेन्द्रनाथ कहता है– हाँ, मैं रबर स्टैंप नहीं बल्कि रबर का एक टुकड़ा हूँ, बेकार जिसे रोज–रोज घिसा जाता है। मैं अस्तित्वहीन हूँ तो मुझे घर में नहीं रहना चाहिए। क्योंकि मेरे घर में रहने की कोई वजह नहीं है। मैं रहूँ तब भी, न रहूँ तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने ही परिवार में उपेक्षित पति की मनोदशा को ये शब्द मुखर कर रहे हैं।

9. पुरुष एक : (सिर हिलाता) हाँ....छोटी सी बात ही तो है यह। अधिकार, रुतबा, इज्जत–यह सब बाहर के लोगों से मिल सकती है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे! मेरे भरोसे तो सब–कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से। (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बिताये एक रात घर से क्यों भाग गयी थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिलकुल सामने आकर) और तुम भी? तुम भी इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि.....?

स्त्री : (बौखलाकर, शेष तीनों से) सुन रहे हो तुम लोग?

पुरुष एक : अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

स्त्री : मैं नहीं जानती, तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या...?

पुरुष एक : सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर ही अन्दर इस घर को खा लिया है (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है (दरवाजे के पास रुककर) और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ यहाँ?

संदर्भ – पूवर्वत।

प्रसंग – घर में अपनी उपेक्षा से तिलमिलाया हुआ महेन्द्रनाथ पत्नी के सामने मन का गुबार निकालते हुए उसकी चारित्रिक कमजोरियों पर प्रकाश डाल रहा है।

व्याख्या – महेन्द्रनाथ कहता है कि रबरस्टैंप यानि– अधिकार, रुतबा और इज्जत। अगर मैं यह भी नहीं दे सकता, पिता और पति का सम्मान मिलना तो दूर जब मुझे रबर स्टैंप भी नहीं समझा जाता तो मैं इस घर में क्यों रहूँ। यह सब चीजें इस घर को सदा बाहर के लोगों से मिलती रही है। वे ही इस घर को अधिकार, रुतबा, इज्जत देते, दिलाते रहे हैं और आगे भी ऐसा ही होगा। वह सावित्री के पुरुष मित्रों के साथ अनैतिक संबंधों पर व्यंग्य करता है। कहता है मेरे कारण तो इस घर में सब कुछ बिगड़ता ही रहा है। लड़का बेकार, आवारा होकर घूम रहा है। लड़की किसी के साथ घर से भाग गई और तुम भी इतने वर्षों से यही चाहती रही हो कि कोई ऐसा मिल जाए जिसके साथ तुम संतुष्ट हो सको और घर छोड़कर जा सको। मैं अपनी, तुम्हरी, बेटा–बेटी की सबकी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार हूँ, तो मुझे इस घर में रहने का क्या अधिकार है? लेकिन मैं पड़ा हूँ यहीं, क्योंकि मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लग गया है मैं काम करने के लिए बाहर जाकर परिश्रम नहीं करना चाहता तुम्हारी कमाई खाकर ऐश करता हूँ।

सावित्री हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि मुझे नहीं मालूम कि तुम ऐसा अनुभव करते हो। सावित्री महेन्द्रनाथ को नकारा के साथ आत्मसम्मानहीन पुरुष समझती है। महेन्द्रनाथ कहता है कि मैं अनुभव करता हूँ। जैसे मैं एक कीड़ा हूँ घुन हूँ जिसने अंदर–अंदर ही परिवार के सुखी लहलहाते वृक्ष को खाकर, खोखला कर दिया है। लेकिन अब मेरी सहनशक्ति खत्म हो गई है, मेरा पेट भर गया है, अब यहाँ इस घर में और नहीं रह सकता। वह दुखी और आहत भाव से घर से निकल जाता है।

10. स्त्री : तू ठहर मुझे बात करने दे। (लड़के से) दिलचस्पी तो मेरी सिर्फ तीन चीजों में है– दिन भर ऊँघने में, तसवीरें काटने में और घर की यह चीज वह चीज ले जाकर....।

लड़का : (कड़वी नज़र से उसे देखता) इसे घर कहती हो तुम?

स्त्री : तो तू इसे क्या समझकर रहता है यहाँ?

लड़का : मैं इसे...।

बड़ी लड़की : (उसे बोलने न देने के लिए) देख अशोक, ममा के यह सब कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि....।

लड़का : मैं नहीं जानता मतलब? तू चली गयी है यहाँ से, मैं तो अभी यहीं रहता हूँ।

स्त्री : (हताश भाव से) क्यों नहीं तू भी फिर....?

बड़ी लड़की : (झिड़कने के स्वर में) कैसी बात कर रही हो, ममा।

स्त्री : कैसी बात कर रही हूँ? यहाँ पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा–पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है? मगर किसी के मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेन्द्रनाथ के घर से जाने के बाद अशोक और सावित्री यानि माँ–बेटे के बीच बहस हो रही है। अशोक घर को घर नहीं मानता जिससे सावित्री आहत होती है।

व्याख्या – सावित्री का बेटा अशोक बेकार है और आवारा गर्दी करता है। वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे घर की चीजें ले जाकर दे देता है। बिना बताए कई दिनों तक घर से गायब रहता है। सावित्री उसे डांटते हुए कहती है कि तू नौकरी नहीं करना चाहता, तेरी किसी चीज में दिलचस्पी है भी या नहीं? तुझे तीन ही चीजों में दिलचस्पी दिखाई देती है– दिन–भर ऊँघने में, तसवीरें काटने में और घर की चीजें ले जाकर उस लड़की को देने में। अशोक तिलमिलाकर कहता है– इस घर को घर कहती हो तुम? सावित्री पूछती है कि तू उसे घर नहीं समझता तो क्या समझकर यहाँ रहता है। बहन को भी अशोक कड़ा उत्तर देता है कि तू तो यहाँ से चली गई, मैं यहाँ रहता हूँ इसलिए मैं सब देखता हूँ समझता हूँ। दूसरे पुरुषों के साथ भटकती माँ, नाकारा पिता, कलह का वातावरण, अभाव इन सबके बीच शांति और सुख खो गए हैं जो घर को घर बनाते हैं। घर के सदस्य मुँह खोलते ही एक–दूसरे पर व्यंग्य बाण चलाते हैं। प्रेम की छाया भी जिस जगह न हो उसे अशोक घर नहीं मानता। वह सोचता है ऐसे दमघोंटू वातावरण से घबराकर ही उसकी बहन दूसरे लड़के के साथ भाग गई। बेटे के तात्पर्य को समझकर सावित्री भीतर से लज्जित होती हुई भी अपने आचरण को सही ठहराने के लिए कहती है कि – बहन चली गई, महेन्द्रनाथ भी आरोप लगाकर घर से चला गया, तू भी क्यों नहीं चला जाता अगर तेरा दम घुट रहा है तो। क्या घर के ऐसे वातावरण के लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ जो सभी मुझ पर आरोप लगा रहे हैं। मैं दिन–रात काम करके घर चला रही हूँ, मेरी थकान और आवश्यकताओं का किसी को ध्यान नहीं है। सब मुझे मशीन समझते हैं जो सबके लिए दिन–रात आटा–पीसकर सबका पेट भरती है। कोई यह समझता ही नहीं कि इस घर को चलाने के लिए मुझे क्या–क्या करना पड़ता है।

11. लड़का : जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नज़र में।

स्त्री : (कुछ स्तब्ध होकर) मतलब?

लड़का : मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

स्त्री : तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

लड़का : उसकी किसी बड़ी चीज की वजह से। एक को कि वह इन्टलैक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं–उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

स्त्री : तू कहना क्या चाहता है इससे? कि ऐसे लोगों के आने से इस घर के लोग छोटे हो जाते हैं।

लड़का : बहुत–बहुत छोटे जो जाते हैं।

स्त्री : और मैं उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...।

लड़का : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलाती सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?

स्त्री : इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का। जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूंगी कोशिश। हाँ, इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारियाँ नहीं

उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही यों अपने को चीखती रहूँ रात–दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ अपनी जगह? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री का बॉस घर आता है। सावित्री अशोक को उससे मिलवाना चाहती है ताकि अशोक को कहीं नौकरी दिलवा दे। लेकिन अशोक बॉस की खिल्ली उड़ाता है, उपेक्षा करता है और उसका वन मानुष जैसा कार्टून बनाता है। बॉस के जाने के बाद दोनों माँ बेटे में बहस होती है।

व्याख्या – अशोक कहता है माँ से कि तुम हमेशा ऐसे लोगों को क्यों बुलाती हो जिनके आने से हम छोटे लोग और छोटे हो जाते हैं। वे अपना बड़प्पन दिखाते हैं और हमारा हीनताबोध गहरा जाता है। एक को तुमने उसकी पाँच हजार तनख्वाह के कारण , दूसरे को उसके इन्टलैक्चुअल होने के कारण, तीसरे को उसके चीफ कमिश्नर होने के कारण घर पर बुलाया। तुम आदमी को नहीं उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाती हो, जिसके कारण हमारी हीनभावना बढ़ जाती है इसलिए मैं ऐसे लोगों से नहीं मिलना चाहता। वे दाता के भाव में बात करते हैं और हमें भिखारी समझते हैं।

सावित्री कहती है कि मैं ऐसे लोगों को इसलिए बुलाती हूँ कि इनसे संबंध अच्छे बने रहें। ताकि इनसे लाभ उठाकर इस घर का कुछ भला कर सकूँ। तुम्हारे नाकारा पिता को ही कोई काम दिला दें या तुम्हें नौकरी दिलवा दें शायद ये लोग, ताकि इस घर का भार जो मुझे अकेले ढोना पड़ रहा है कुछ हल्का हो जाए, बंट जाए। लेकिन अगर तुम्हें इनके आने से हीनताबोध अनुभव होता है तो नहीं बुलाऊंगी। लेकिन अब मैं भी अकेले इस घर का भार नहीं ढो सकती। सभी अपना–अपना इंतजाम कर लो। महेन्द्र व्यवसाय में वर्षों की कमाई गंवा कर हाथ–पर–हाथ धरे बैठें हैं, न स्वयं कुछ करते हैं घर के लिए, न मेरी सहायता से कोई काम बन रहा हो तो उसे स्वीकार करते हैं, उल्टा आरोप लगाते हैं। जब सभी निश्चिंत बैठे हैं इस घर में और सबके जीवन से आंखें मूंदकर तो मैं ही क्यों हैरान रहूँ। मैं भी ठाठ से बैठी रहूँगी। किसी की नौकरी की चिंता में बॉस को नहीं बुलाऊंगी ताकि तुम लोग हीनता बोध अनुभव न करो। अब से मैं भी घर परिवार की चिन्ता छोकड़कर केवल अपने सुख और आराम के बारे में सोचूँगी। संकेत इस ओर है कि स्त्री यदि किसी बाहरी पुरुष से चाहे नेक इरादे से ही संबंध बढ़ाए तो उसका चरित्र संहेहास्पद हो जाता है। केवल पति ही नहीं अपितु पुत्र भी उसके इस व्यवहार को नहीं सह पाता।

12. लड़का : और मैं ही शायद इस घर में सबसे ज्यादा नाकारा हूँ।... पर क्यों हूँ?

बड़ी लड़की : यह... यह मैं कैसे बता सकती हूँ?

लड़का : कम से कम अपनी बात तो बता ही सकती है। तू यह घर छोड़कर क्यों चली गयी थी?

बड़ी लड़की : (अप्रतिभ होकर) मैं चली गयी थी.... चली गयी थी...क्योंकि....।

लड़का : क्योंकि तू मनोज से प्रेम करती थी! खुद तुझे ही यह गुट्टी बहुत कमजोर नहीं लगती?

बड़ी लड़की : (रुआंसी पड़कर) तो तू मुझसे...मुझसे भी कह रहा है कि...?

लड़का : मैंने कहा था तुझसे...मत कर बात।

स्त्री : (अत्यधिक गंभीर) तुझे पता है न, तूने क्या बात कही है? पता है न? तो ठीक है। आज से मैं सिर्फ अपनी जिन्दगी को देखूंगी...तुम लोग अपनी–अपनी जिन्दगी को खुद देख लेना।

मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं

काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक, मेरी तरफ से यह अन्त है उसका...। निश्चित अन्त।

संदर्भ – उपरोक्त।

प्रसंग – सावित्री कहती है कि मैं अकेले अब इस घर का भार नहीं ढो सकती। अशोक कहता है बिन्नी से कि जब इनसे अकेले नहीं निभता तो क्यों निभा रही हैं? बेटे की बात से सावित्री आहत होती है तथा तीनों के बीच निर्णयात्मक संवाद होता है।

व्याख्या – सावित्री को सुनाते हुए अशोक बिन्नी से कहता है कि ये कई बार इस बात को कह चुकी है कि अकेले भार ढो रही हैं, अब नहीं निभता, तो क्यों निभा रही हैं? किसके लिए और क्यों कर रही है? बिन्नी हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि ममा ये सब स्वयं के लिए नहीं बल्कि इस घर के लोगों के लिए कर रही हैं। किन्नी के लिए... डैडी के लिए तेरे और मेरे लिए कर रही हैं। अशोक कहता है– गलत है। तेरे लिए करती तो तू इस वातावरण से घबराकर घर छोड़कर न भागती। तू चली गई और कलह से घबराकर डैडी भी चले गए। किन्नी दिनों–दिन बिगड़ती जा रही है। न उसकी शिक्षा की ओर, न संस्कारों की ओर इनका ध्यान है। माँ होने के नाते जो इन्हें करना चाहिए वह करतीं तो घर क्या इस रूप में होता। एक मैं ही नकारा हूँ, इसके पीछे वही घुटन है जो तेरे घर छोड़कर जाने के पीछे थी। बिन्नी कहती है– मैं घुटन के कारण घर से नहीं भागी बल्कि इसलिए गई क्योंकि मैं मनोज से प्रेम करती थी। अशोक उसका मजाक उड़ाते हुए कहता है कि तेरी यह दलील झूठी है, कमजोर है, यह तू भी जानती है। क्योंकि तू मनोज से प्रेम नहीं करती थी बल्कि उसने तुझे प्रेम किया और उज्ज्वल भविष्य का सपना दिखाया। तुझे लगा घर के इस घुटन भरे वातावरण से निकलने का यही एक रास्ता है और तू चली गई। अशोक और बिन्नी की बहस सुनकर सावित्री आहत होती है। बेटे के मन में उसके लिए इतनी कड़वाहट, अपमान और उपेक्षा है यह जानकर वह गहन दुख का अनुभव करती है और अशोक से कहती है –तूने आज बहुत बड़ी बात कह दी, इसे ध्यान रखना। अब तुम सब अपना–अपना ध्यान रखो, मेरी तरफ से इस उत्तरदायित्व का आज निश्चित अंत हो गया समझो। मेरी बची हुई थोड़ी सी जिन्दगी है उसे अब मैं अपन लिए अपने तरीके से जीऊँगी। घर के लिए जितना कर सकती थी किया और जो पाया वह देख रही हूँ। इसलिए अब मैं स्वयं को सारे उत्तरदायित्वों से मुक्त करती हूँ। अपनी मर्यादाओं को भंग करने वाले लोगों का परिवार अंततोगत्वा किस प्रकार टूटने की ओर बढ़ता है, वह परिस्थिति यहाँ उभरकर सामने आई हैं।

13. पुरुष चार : तुम किसी तरह छुटकारा नहीं दे सकतीं उस आदमी को?

स्त्री : छुटकारा? मैं? उन्हें? कितनी उलटी बात है!

पुरुष चार : उलटी बात नहीं है। तुमने जिस तरह बांध रखा है उसे अपने साथ..।

स्त्री : उन्हें बाँध रखा है? मैंने अपने साथ? सिवा आपके कोई नहीं कह सकता था यह बात।

पुरुष चार : क्योंकि और कोई जानता भी तो नहीं उतना जितना मैं जानता हूँ।

स्त्री : आप हमेशा यही मानते आये हैं कि आप बहुत ज्यादा जानते हैं। नहीं?

पुरुष चार : महेन्द्रनाथ के बारे में, हाँ। और जानकर ही कहता हूँ कि तुमने इस तरह शिकंजे में कस रखा है उसे कि वह अब अपने दो पैरों पर चल सकने लायक भी नहीं रहा।

स्त्री : अपने दो पैरों पर! अपने दो पैर कभी थे भी उसके पास?

पुरुष चार : कभी की बात क्यों करती हो? जब तुमने उसे जाना, तब से दस साल पहले से मैं उसे जानता हूँ।

स्त्री : इसलिए शायद जब मैंने जाना, तब तक अपने दो पैर रहे ही नहीं थे उसके पास।

पुरुष चार : मैं जानता हूँ सावित्री, कि तुम मेरे बारे में क्या–क्या सोचती और कहती हो...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – पुरुष चार अर्थात् जुनेजा और सावित्री के बीच सावित्री के गृहस्थ जीवन और महेन्द्रनाथ को लेकर वार्तालाप हो रहा है।

व्याख्या – जुनेजा सावित्री से कहता है कि मेरा मित्र महेन्द्रनाथ गलत नहीं है। उसका भाग्य उसका साथ नहीं दे रहा है। वह तुम्हें और इस घर को बहुत चाहता है इसलिए तुम लोगों की उपेक्षा और अपमान पाकर भी तुमसे बंधा हुआ है। तुम अपनी अतृप्ति और सब कुछ पा लेने की महत्वाकांक्षा में कहाँ–कहाँ जाती हो, वह सब जानता है फिर भी तुमसे बंधा है। तुम उसे छोड़ क्यों नहीं देती? उसे छुटकारा दे दोगी तो वह फिर से एक नए विश्वास के साथ अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा। अभी बार–बार तुम्हारे ताने सुनकर, उसका आत्मविश्वास खो गया है। उसे छोड़ दो। सावित्री कहती है कि कितनी उलटी बात कर रहे हो। मैं क्यों उन्हें बांध कर रखूंगी। वे मेरे पति हैं लेकिन तुम्हारे मित्र अधिक हैं इसलिए तुम मुझसे ज्यादा उन्हें जानते हो शायद। रही बात पैरों पर खड़े होने की तो मुझे नहीं लगता कि उनके पास कभी खुद के दो पैर थे। अर्थात् वे हमेशा तुम्हारी बैसाखी लेकर चलते रहे स्वयं कोई निर्णय लेने की क्षमता उनमें थी ही नहीं। पहले भी तुझसे पूछकर हर कार्य करते थे आगे भी मुझसे ज्यादा उन्हें तुम्हारी आवश्यकता होगी और ऐसा ही तुम लोग चाहते हो। जुनेजा सावित्री के व्यंग्य बाणों को सुन कर कहता है कि तुमसे विवाह के दस वर्ष पहले से मैं महेन्द्र को जानता हूँ। तुमने ही उसे ऐसा बनाया है पहले वह ऐसा नहीं था। लेकिन तुम मुझ पर ही आरोप लगा रही हो। मैं जानता हूँ मेरे संबंध में तुम बहुत कुछ सोचती हो और कहती हो लेकिन मैं बुरा नहीं मानूंगा। सामान्य स्त्री स्वभाव के अनुसार सावित्री को अपना पति नाकारा व निकम्मा प्रतीत हो रहा जबकि जुनेजा के विचार में विवाह बंधन के कारण उसकी यह दशा हुई है।

14. स्त्री : (खड़ी होती) मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूँ।.. एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन–सी जरूरत! अपने अन्दर के किसी उसको ...एक अधूरापन कह लीजिए उसे... उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए.. .अपने में....पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को परा करते रहने में ही जिन्दगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए जिन्दगी का मतलब रहा है... जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं या जिस तरह वह सोचते हैं उनकी जिन्दगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।

पुरुष चार : इस्तेमाल हो सकता है?

स्त्री : नहीं? इस काम के लिए और कोई नहीं जा सकता, महेन्द्रनाथ चला जाएगा। इस बोझ को और कोई नहीं ढो सकता, महेन्द्रनाथ ढो लेगा। प्रेस खुला, तो भी। फैक्टरी शुरू हुई, तो भी। खाली खाने भरने की जगह पर महेन्द्रनाथ और खाने भर चुकने पर? महेन्द्रनाथ कहीं नहीं। महेन्द्रनाथ अपना हिस्सा पहले ही ले चुका है, पहले ही खा चुका है और उसका हिस्सा। (कमरे के एक–एक सामान की तरफ इशारा करती) ये ये ये दूसरे–तीसरे–चौथे दरजे की घटिया चीजें, जिनसे वह सोचता था, उसका घर बन रहा है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग–महेन्द्रनाथ को लेकर जुनेजा और सावित्री के बीच बहस हाती है। इन पक्तियों में सावित्री महेन्द्रनाथ और उसके मित्रों की वास्तविक मनःस्थिति पर प्रकाश डाल रही है।

व्याख्या – सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाते हुए कहती है कि तुम जैसे मित्रों ने महेन्द्र का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया लेकिन महेन्द्र इस बात को समझता ही नहीं। वह हर बात तुमसे पूछे बिना नहीं मानता, हर काम करने के लिए तुमसे पूछता है कि यह सही है या नहीं। जो तुम सही कहो, वही उसके लिए सही है।

सावित्री कहती है– आदमी अपनी जिन्दगी का अधूरापन मिटाने, खालीपन भरने के लिए विवाह करता है, घर बसाता है लेकिन महेन्द्रनाथ के लिए पत्नी और घर से अधिक महत्वपूर्ण था मित्रों के खालीपन को भरना। जब प्रेस का काम शुरू हुआ, जब फैक्टरी शुरू हुई तब भी जहाँ कोई काम करने के लिए नहीं है उसे तुमने महेन्द्र के ऊपर डाल दिया और जब उस जगह पर कोई आ गया तो महेन्द्र को निकाल दिया और निर्णय भी दे दिया कि महेन्द्र ने जितना रुपया लगाया था उतना हिस्सा वह ले चुका है, और वह हिस्सा था तीसरे–चौथे दर्जे की घटिया कुर्सियाँ, मेजें...। महेन्द्र इस सामान के रूप में अपना हिस्सा लाकर घर में रखता था और सोचता था कि उसका घर बन रहा है। वह बेवकूफ बनता रहा। काम वह करता था और लाभ तुम लोग उठाते थे और उसे यह कहा गया कि उसके हिस्से का पैसा डूब गया उसे नुकसान हुआ और तब से वह नकारा घूम रहा है, जिसके उत्तरदायी तुम लोग हो। सावित्री जुनेजा को धिक्कारती है कि उसके पति और गृहस्थी को बर्बाद करने वाले कोई और नहीं उसके मित्र ही हैं, जिन्होंने मित्र बनकर शत्रुओं जैसा कार्य किया।

15. वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू–सा बना हलके–हलके मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं, कब किसे नोंच लेगा, कब किसे फाड़ खायेगा! वह ताव में अपनी कमीज को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूँ? मानेगी वह सब कि नहीं, जो मैं कहता हूँ? पर सावित्री फिर भी नहीं चलती। वह सब नहीं मानती। वह नफरत करती है इस सबसे–इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए–एक...पूरा... आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है इस आदमी में, तो दोस्तों में इसका गम मनाया जाने लगता है। सावित्री महेन्द्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही है। सावित्री बेचारे महेन्द्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक नहीं रहने दे रही है। जैसा कि आदमी न होकर बिन हाड़–माँस का पुतला हो वह एक–बेचारा महेन्द्र!

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाती हुई महेन्द्रनाथ के बर्बाद होने के लिए उसकी मित्र मंडली को दोषी ठहराती है।

व्याख्या – सावित्री जुनेजा से कहती है कि महेन्द्र ने मुझसे विवाह करके अच्छे गृहस्थ की तरह जीना आरंभ किया तो तुम लोगों को बुरा लगा। तुम्हें लगा तुम्हारे मित्र को मैंने छीन लिया। अब वह तुम्हारा मनोरंजन और बेगार करने के लिए खाली नहीं था इसलिए तुमने उसे शिक्षा देना शुरू किया और उसे मेरी जिन्दगी और गृहस्थी से विमुख कर दिया। परिणाम यह हुआ कि महेन्द्र मित्रों के बीच दब्बू और सीधा सादा शालीन बना मुस्कुराता रहता है लेकिन घर के अंदर घुसते ही दरिंदा बन जाता है। चीखता है, चिल्लाता है, मार–पीट करता है, पत्नी की छाती पर चढ़कर उसके बाल नोंचता है, सिर दीवार से रगड़ देता है लगता है जैसे सबको फाड़ कर खा जाएगा। पत्नी को अपने अनुसार चलने के लिए विवश करता है। ऐसे चलो, ऐसे पहनो, ऐसे खाओ, ऐसे मिलो, बात करो। पर नहीं, वह हार जाता है। मैं उसकी दरिंदगी से डरकर उसके अनुसार चलने से मना कर देती हूँ। मैं नफरत करती हूँ ऐसे दरिंदे आदमी से। मुझे एक पूरा आदमी चाहिए। ऐसा आदमी जो आदमियत की और पति की, प्रेमी की, हर कसौटी पर खरा उतरे। मैंने कभी महेन्द्र को ऐसा आदमी बनाने का प्रयत्न किया भी लेकिन नहीं बना सकी तो हार कर उससे अलग होने का प्रयत्न भी किया, वह भी नहीं कर पाई हूँ। जब कभी महेन्द्र में थोड़ा परिवर्तन आया, उसे मुझसे और

घर से लगाव हुआ, उसने मुझे और घर को समय देना शुरू किया तो उसके मित्रों में दुख की लहर फैल गई कि बेचारा महेन्द्र कठपुतली बन गया है। बीबी उसे नकेल डालकर नचा रही है। उसकी कमर तोड़कर उसे नकारा बना रही है। अर्थात् मित्रों की दृष्टि में पत्नी और घर को समय देना पुरुषार्थ के विरूद्ध माना जाता मित्रों की इन टीका टिप्पणियों से प्रभावित होकर महेन्द्र फिर बदल जाता– और मित्र प्रसन्न हो जाते कि उनका बेगार ढोने वाला वापस आ गया है। सावित्री जुनेजा को सीधे सीधे अपनी गृहस्थी की बर्बादी का जिम्मेदार ठहराती है।

16. पुरुष चार : असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल–दो साल बाद, तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदती से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, काई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ भी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। वह आदमी भी इसी तरह तुम्हें अपने आसपास सिर पकड़ता और कपड़े फाड़ता नजर आता...और तुम।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री के द्वारा लगाए गए आरोप सुनकर जुनेजा अत्यंत गंभीरता के साथ उसे उसके वास्तविक चरित्र से परिचित कराता है और कहता है कि सावित्री अपनी बर्बाद गृहस्थी के लिए तुम स्वयं उत्तरदायी हो।

व्याख्या – सावित्री अपनी पथभ्रष्टता को न्यायसंगत ठहराने के लिए जुनेजा पर आरोप लगाती है कि उसने यदि उसके पति का शोषण करके उसे नाकारा और आत्मविश्वासहीन न बनाया होता तो गृहस्थी चलाने के लिए उसे उतना परिश्रम न करना पड़ता, जितना वह कर रही है। इस पर जुनेजा उत्तर देता है कि तुम अपने आप को सही सिद्ध करने के लिए महेन्द्र को दोषी ठहरा रही हो लेकिन वास्तव में दोषी तुम हो। तुम अतृप्त हो, कुंठित हो, महत्वाकांक्षी हो, तुम एक साथ सब कुछ पा लेना चाहती हो। किसी एक आदमी में सब कुछ मनचाहा पा लेना स्वाभाविक नहीं है लेकिन यह बात तुम न समझती हो, न मानती हो इसलिए महेन्द्र तुम्हें अपूर्ण लगता है और पूर्णता की खोज में तुम एक पुरुष से दूसरे और दूसरे से तीसरे के पास भटकती रही हो लेकिन पूर्णता और स्थायित्व तुम्हें कहीं–नहीं मिला, मिल भी नहीं सकता क्योंकि किसी मनुष्य को सब कुछ नहीं मिलता। महेन्द्र की जगह कोई भी आदमी होता, जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत, तुम उससे विवाह के साल–दो–साल बाद यही सोचती जो आज सोच रही हो। तुम्हें एक साथ सब कुछ एक ही जगह नहीं मिलता और तुम इसी तरह खाली, अपूर्ण और अतृप्त अनुभव करतीं। वह आदमी भी तुम्हें महेन्द्र की तरह दरिंदा, कपड़े फाड़ता, सिर फोड़ता नज़र आता। तुम इसी तरह उसकी अपूर्णता की शिकायत करतीं।

जुनेजा का तात्पर्य है कि अपूर्णता, असंतुष्टि सावित्री के अंदर है वह सत्य को स्वीकार न करने एक असंभव सी चीज पूर्णता को पाने के लिए एक पुरुष से दूसरे पुरुष की यात्रा करती हुई पतित हो रही है और गृहस्थी बर्बाद कर रही है जिसका आरोप वह पति पर मढ़ रही है। वैवाहिक संबंधों में एक दूसरे को अपने सांचे में ढालने की कोशिश प्रायः पति–पत्नी को असफलता ही हाथ लगती है, इस तथ्य की कटुता इन शब्दों में नाटककार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक चित्रित की है।

2.5 चरित्र चित्रण

आधे–अधूरे के सभी पात्र भारतीय संस्कृति से भटके और पाश्चात्य संस्कृति से संक्रमित दिखाई देते हैं।

महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में लगी स्त्री सावित्री पथभ्रष्ट प्रतीत होती है तो पुरुष महेन्द्रनाथ और अशोक नकारा, अकर्मण्य, आलसी और परजीवी प्रतीत होते हैं। आत्मसम्मान और पौरुष से हीन दिखाई देते हैं। किन्नी, बिन्नी, सावित्री सभी असंतुष्ट, अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए बेचैन, गलत मार्ग पर चलती हुई, कुंठित, हीनता–ग्रंथि का शिकार और अपने–अपने वक्त में एकाकी दिखाई देती हैं। मोहन राकेश ने अन्य पुरुष पात्रों–सिंघानिया, जगमोहन, जुनेजा, मनोज सभी को भोग–विलास में रत, स्वार्थी, शोषक एवं कुसंस्कारी दिखाकर पाश्चात्य सभ्यता से आच्छादित समाज के प्रतिनिधियों की ओर संकेत किया है जो भावनाओं का, मित्रता का लाभ उठाकर केवल स्वयं का भला करते हैं। यह नाटक असंतुष्ट अधूरेपन से ग्रस्त पात्रों का दस्तावेज है। कथा के अनुकूल पात्रों का चयन किया गया है, जिनकी वेशभूषा, भाषा, संवाद एवं प्रवृत्ति प्रभावशाली है जो नाटक को जीवंत बनाती है। आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में जो विशेष रूप से महानगरों में बसते हैं, ऐसे चरित्रों की भरमार है। अनेक सावित्रियाँ, किन्नियाँ, महेन्द्रनाथ और अशोकों से समाज भर गया है। असंतुष्टि, आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति, ज्यादा पाने की होड़, कम समय और कम मेहनत कर सब कुछ एक साथ ज्यादा से ज्यादा पाने की होड़ में लगे भटकते अशोकों, सावित्रियों से समाज पटा पड़ा है। यह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के दुष्परिणाम हैं जिनको दिखाने के लिए ही संभवतः मोहन राकेश ने ऐसे पात्रों का चयन किया जो कथा की कसौटी पर खरे उतरते हैं। चरित्रों के चयन की दृष्टि से भी यह सफल नाटक है।

2.5.1 महेन्द्रनाथ

महेनद्रनाथ नाटक का मुख्य परुष पात्र है। यह सावित्री का पति है तथा बिन्नी, किन्नी और अशोक का पिता है। व्यवसाय में मित्रों पर निर्भरता और विश्वास के कारण सारा धन गंवाकर अब बेकार बैठा है। यह निकम्मा और दब्बू प्रतीत होता है क्योंकि सावित्री की कमाई पर पलता है और उसके पुरुष मित्रों से उसकी निकटता देखकर यदा–कदा व्यंग्य करता है। बहस करता है और दो–दो, तीन–तीन दिन के लिए घर से गायब होकर मित्रों के घर पड़ा रहता है। महेन्द्रनाथ गैर जिम्मेदार है वह न घर संभालने की जिम्मेदारी उठाता है न बच्चों की। अगर वह बच्चों को प्यार, अनुशासन एवं संस्कार सिखाता तो घर इतना बिखरा हुआ और तनावग्रस्त नहीं होता। नौकरी से लौटने पर सावित्री बच्चों को पिता के साथ बैठकर पढ़ते देखती, घर को व्यवस्थित देखती तो उसके अंदर कार्य करने की लगन और उत्साह बढ़ जाता। वह सारी थकान भूलकर पति और बच्चों के प्यार तथा सहानुभूति से जीवंतता का अनुभव करती। लेकिन महेन्द्रनाथ घर का मुखिया होते हुए भी इस दायित्व को नहीं समझता। उसे यहाँ–वहाँ भटकते, बिगड़ते बच्चों की चिंता नहीं है। उसकी खीझ का एक मात्र केन्द्र सावित्री है। महेन्द्रनाथ पत्नी को अमानवीय तरीके से पीटता, प्रताड़ित करता हुआ क्रूर पुरुष भी है जो असफल पुरुषार्थ की हीनता को कम करने के लिए पत्नी को प्रताड़ित करता है। लेकिन वह हार जाता है क्योंकि उसकी प्रताड़ना के कारण उसके अमानवीय व्यवहार के कारण उसके चरित्र का खोखलापन उजागर होता है, जिससे पत्नी और बच्चे न केवल दूर हो जाते हैं बल्कि कोई उसका सम्मान भी नहीं करता। सावित्री खुले आम एक के बाद एक पुरुषों के साथ घूमती है। उसे दूसरे पुरुषों के साथ संबंध बनाकर महेन्द्र को हीन दिखाने में मजा आने लगता है। वह घर छोड़कर जाने के लिए उतावली है और बार–बार कहती है कि जिस दिन कोई ठीक–ठीक आधार मिल गया वह चली जाएगी। आधार से तात्पर्य ऐसा पुरुष जो पूर्ण हो, सक्षम हो, जो सावित्री की कामनाओं की कसौटी पर खरा उतरे। जब सावित्री किसी पुरुष मित्र को घर बुलाती है तो महेन्द्रनाथ नपुंसक की तरह किसी काम का बहाना करके घर से बाहर चला जाता है। गृहस्वामी होते हुए भी उसका व्यवहार नौकर से भी बदत्तर है। वह स्वयं खीझ कर कहता है कि उसकी हैसियत एक रबर के टुकड़े के समान है। महेनद्रनाथ में निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। वह हर निर्णय अपने मित्रों से पूछ कर करता है। उसमें आत्मदृढ़ता भी नहीं है, वह बार–बार बहस करके घर छोड़कर जाता है, लेकिन फिर सावित्री के पास लौट आता है, क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। अपनी कमजोरियों को महेन्द्रनाथ समझता है इसलिए वह कहता है कि – मैं कीड़ा हूँ जो इस घर को खोखला कर रहा हूँ। मैं सबके पतन के लिए जिम्मेदार हूँ। मेरी

हड्डियों में जंग लग गयी है इसलिए पत्नी और बच्चों की उपेक्षा तथा तिरस्कार सहकर भी इस घर में पड़ा रहता हूँ। महेन्द्रनाथ के अंदर जीवन में कुछ भी हासिल न कर पाने की पीड़ा और कुंठा है। वह ऐसा पुरुष है जिसने पत्नी को अपने अनुसार चलाने में ही अपना पुरुषार्थ समझा, पत्नी को अपने हाथों की कठपुतली बनाना चाहा लेकिन बुरी तरह हार गया। न केवल पत्नी बल्कि बच्चे भी उसके हाथ और अधिकार क्षेत्र से निकल गए। वह असंतुष्ट और निराश व्यक्ति है तथा पलायनवादी है। संघर्ष करके सब कुछ पा लने का प्रयत्न करने के बजाय वह सिगरेट और शराब में डूबा गम गलत करता है। महेन्द्रनाथ कमजोर व्यक्ति है, उसकी आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, स्वार्थ परता उसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का प्रतिनिधि घोषित करती है। वह न अच्छा पति है न अच्छा पिता बल्कि वह श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं लगता। राकेश जी ने आधे–अधूरे के इस पात्र के माध्यम से मध्यवर्गीय, अभावग्रस्त, महत्वाकांक्षी लेकिन अकर्मण्य पुरुष की छवि को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त किया है। पूरे नाटक में यह पात्र अपने लिजलिजेपन से केवल खीझ उत्पन्न करता है, सहानुभूति अर्जित नहीं करता। यह आधुनिक परिवेश के विकारों से ग्रस्त पात्र है।

2.5.2 अशोक

यह सावित्री और महेन्द्रनाथ का बेटा है। नाटक में यह एक अल्पशिक्षित, आवारा, निकम्मा और उद्दण्ड पात्र है जो अपनी माँ से मर्यादाहीन वार्तालाप करके अपनी खराब छवि प्रस्तुत करता है। संघर्ष करती हुई माँ का सहारा बनने की बजाय यह उसके कार्यों को गलत सिद्ध करता हुआ उस पर आरोप लगाता है। यह एक कृतघ्न पात्र है जो माँ के सारे अहसानों पर पानी फेर देता है यह कहता हुआ कि ये जो कुछ करती हैं स्वयं के सुख के लिए करती हैं। वह कहता है किन्नी दिनोंदिन बिगड़ रही है, बिन्नी मनोज के साथ घर से भाग गयी, पिता लड़कर घर से चले गए, मैं नकारा घूम ही रहा हूँ। अगर सावित्री बच्चों और घर के लिए ही संघर्ष कर रही होती तो घर का और बच्चों का यह हाल न होता। वह कटु भाषा में संवाद करता है। अशोक स्वयं कुछ कमाता नहीं, घर से उसे जेबखर्च मिलता नहीं, इसलिए वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे उपहार देने के लिए घर की चीजें उठा–उठाकर ले जाता है। वर्तमान में आधुनिक युवा पीढ़ी स्वयं परिश्रम करने से बचती है तथा माता–पिता से अपेक्षा करती है कि वे उसकी जिंदगी को ऐशो–आराम युक्त बनाने के साधन उपलब्ध कराएँ। ऐसा न हो पाने पर वह माता–पिता के प्रति क्रूरता, असभ्यता से भरा व्यवहार करती है। अशोक ऐसा ही युवा है जो आलसी और अकर्मण्य है। पढ़ने में उसकी रूचि नहीं है न ही वह कोई काम करना चाहता है। माँ अपने अधिकारियों, पुरुष मित्रों से मिलवाकर उसे काम दिलाना चाहती है तो वह उनसे नहीं मिलना चाहता बल्कि माँ को चरित्रहीन समझता है और स्वयं को श्रेष्ठ और स्वाभिमानी प्रदर्शित करता है। अशोक अपने पिता की ही तरह गैर जिम्मेदार है। वह अपने परिवार के प्रति किसी दायित्व को निभाना आवश्यक नहीं समझता। उसके मन में परिवार के लिए प्रेम भी दिखाई नहीं देता क्योंकि प्रेम होता तो वह जिम्मेदारी भी समझता। किन्नी को बिगड़ने से बचाता। माँ का सहयोग करता। अशोक एक स्वार्थी युवा है। अपने अधूरेपन को भरने के लिए भी गलत रास्तों पर चल रहा है। अपने समवयस्क युवाओं के साथ रहने पर हीनता से ग्रस्त होने के कारण संभवतः वह कुंठित एवं विकृत आचार–विचार का प्रदर्शन करता है। वह सावित्री के बॉस का कार्टून बनाता है, व्यंग्य करता है इससे यह तो पता चलता है कि वह बुद्धिमान है, लेकिन वह अपनी बुद्धि का प्रयोग नकारात्मक कार्यों में करता है। वह भी पिता की तरह घर में किसी को बताए बिना कई–कई दिनों तक घर से गायब रहता है।

'आधे–अधूरे' नाटक के हर पात्र की तरह अशोक भी असंतुष्ट भटकता, एकाकीपन से ग्रस्त पात्र है। कमरे में बैठकर फिल्मी अश्लील पत्रिकाएँ पढ़ना तथा चित्र–काट–काटकर रखना उसका शौक है। उसे घर में घुटन का अनुभव होता है। वह मानता है कि इसी घुटन से तंग आकर उसकी बहन बिन्नी मनोज के साथ भाग गयी। वह स्पष्ट वक्ता है बोलते समय यह नहीं सोचता कि उसके शब्दों से किसी का मर्म आहत हो सकता है। इसके दो उदाहरण दिए जा सकते हैं– एक तो वह बिन्नी से कहता है कि तू घर से इसलिए नहीं गई कि तुझे मनोज से प्रेम

हो गया था बल्कि मनोज के रूप में तुझे एक खिड़की मिली कि तू इस घर से बाहर जाकर चैन की साँस ले सके। दूसरा वह माँ के लिए कहता है कि बार–बार कहती हैं कि अब अकेले जिम्मेदारी नहीं सम्भाली जाती मुझसे, अब केवल अपने लिए जीऊंगी तो क्यों नहीं छोड़ देतीं जिम्मेदारी निभाना, हमें हमारे हाल पर छोड़कर जाए जहाँ जाना हो। अशोक की कटूक्तियों में कहीं सच्चाई भी दृष्टिगोचर होती है तब लगता है कि भले ही वह आवारा घूमता है, पढ़ता नहीं, कोई काम नहीं करता लेकिन परिस्थितियों को समझने और विश्लेषण करने की उसमें भरपूर क्षमता है। यह नाटक वर्तमान समाज के मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त संघर्ष, तनाव, द्वंद्व, कुंठा के बीच पलती पीढ़ी के आक्रोश एवं मनोवृत्तियों को सफलतापूर्वक दर्शाता है। अशोक एक नकारात्मक छवि को प्रस्तुत करने वाला पात्र है जिसके परिप्रेक्ष्य में सावित्री के प्रति सहानुभूति बढ़ती है। दूसरी ओर यदि सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यही एक पात्र है जो माँ के चरित्र के अनुरूप अपने चरित्र/व्यवहार का औचित्य सिद्ध करता है।

2.5.3 सावित्री

सावित्री एक मध्यवर्ग की आधुनिक नारी है। 'आधे–अधूरे' में सावित्री नाटक का मुख्य आधार है। वही प्रमुख स्त्री है जिसे नायिका कहा जा सकता है। उसके अनेक संबंध हैं; पति महेन्द्रनाथ और बॉस सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा– जिन्हें क्रमशः एक, दो, तीन, चार पुरुष कहा गया है। सावित्री के जीवन में ये आते–जाते हैं। सावित्री के माध्यम से राकेष आधुनिक स्त्री को चित्रित करना चाहते हैं जिसकी कई भूमिकाएँ हैं। आर्थिक रूप में कई बा रवह परिवार की धुरी हैं। घर के लिए वह कमा कर लाती है, पर गृहस्थी भी उसे ही देखनी पड़ती है, बच्चों की सारी जिम्मेदारी भी उसी के कन्धों पर है। कई पात्र उसके जीवन में आते हैं जिसका कारण उसका असन्तोष तो है ही, पर वह परिवार को भी उठाना चाहती है, जैसे बॉस सिंघानिया से बेटे अशोक की नौकरी के लिए निवेदन। नाटक में वह आदि से लेकर अन्त तक सक्रिय है और घटनाचक्र उसी के इर्ध–गिर्द घूमता रहा है तो इसके लिए समाजशास्त्रीय कारण तो है ही, उसका अहं भी है, परिस्थितियाँ भी हैं। वह माँ है और अपने बेटे–बेटियों को भी ऊपर उठाना चाहती है। यह बात दूसरी है कि वह सफल नहीं हो पाती।

सावित्री के माध्यम से राकेश एक कामकाजी महिला को सामने लाते हैं, और इस दृष्टि से वह आधुनिक नारी है। राकेश ने आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर इस प्रकार के पात्र अपनी अन्य रचनाओं में भी प्रस्तुत किए हैं। सावित्री आधुनिक नारी के रूप में अपना स्वतन्त्र आर्थिक आधार रखती है। वह नौकरी करती है और इस आधार पर स्वतन्त्र सामाजिक संबंध भी बनाना चाहती है। पति महेन्द्रनाथ बेकार है, सावित्री को नौकरी करने की यही विवशता नहीं है, स्वभाव से भी वह आर्थिक स्वतन्त्रता चाहती है। आधुनिक भारतीय नारी के विषय में सोचा गया कि यदि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाए तो उसकी स्थिति बेहतर हो सकती है। पर यह अधरी दृष्टि है। नारी अपने शरीर में तो दुर्बल है ही, भारत में जब तक सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से नारी सम्मानित नहीं होती, स्थिति में परिवर्तन सम्भव नहीं। अब भी जैसे आधनिकता के नाम पर हम मध्यकाल के सामन्ती समाज में जी रहे हैं; दहेजप्रथा, अनमेल विवाह, बलात्कार, स्त्री के प्रति निरादर भाव आदि आम बातें हैं। इन स्थितियों में आधुनिक भारतीय नारी ने आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होना चाहा तो क्या उसके 'स्टेटस' में सामाजिक दृष्टि से कोई गुणात्मक परिवर्तन हुआ? सम्भवतः नहीं। क्योंकि स्थितियाँ बार–बार बदलीं, ऊपर–ऊपर–मानसिकता में अधिक परिवर्तन नहीं आया और नारी के प्रति दृष्टि में प्रायः वही पिछड़ापन मौजूद है।

सावित्री के माध्यम से राकेश जिस आधुनिक नारी का चित्रण करते हैं, वह साधारण मध्यमवर्ग की है, और परिवार के साथ तमाम उम्र समझौते करती है। तथाकथित 'इण्टलेक्चुअल' मध्य वर्ग की नारी आर्थिक रूप से स्वतन्त्रता पाने के प्रयत्न में काफी हद तक सफल हुई, पर राकेश प्रश्न उठाते हैं कि वह सन्तुष्ट है क्या? सम्भवतः नहीं। सावित्री की 'ट्रैजिडी' ही यह है कि वह आर्थिक आधार बनाकर अपने जीवन को स्वतन्त्रता देना चाहती है, पर ऐसा हो नहीं पाता। वह स्वयं भी टूट–बिखर जाती है, तरह–तरह के दबावों में रहती है और परिवार तो विघटन के

कगार पर है ही। आधुनिक नारी के रूप में उसकी सीमा यह है कि वह परिवार को अपने ढंग से चलाना चाहती है– पति से लेकर बेटा, बेटी और तथाकथित मित्रों तक को, पर यह सम्भव नहीं, क्योंकि आजादी तो सभी चाहते हैं– स्कूल में पढ़नेवाली छोटी बेटी तक। सावित्री चाहती है कि घर ठीक–ठाक रहे, और ऐसा न होते देखकर झुंझलाती है, चीखती है। पति महेन्द्रनाथ से कहती है; 'पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का? रोज आने पर पचास चीजें यहाँ–वहाँ बिखरी मिलती हैं।' आधुनिक प्रवृत्ति के कारण सावित्री घर को यन्त्रवत् चलाना चाहती है, व्यवस्था चाहती है, पर यह संभव नहीं होता और वह खीझती चली जाती है और इस क्रम में लगातार टूटती है।

सावित्री आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना चाहती है, चाहे अपनी इच्छा से अथवा विवशता में, पर यह उसके जीवन का प्रमुख प्रश्न है। उस पर पूरे परिवार का बोझ है जिसके कारण उसे यथार्थ से समझौते करने पड़ते हैं। उसकी स्वाभाविक इच्छा है कि पति महेन्द्रनाथ कुछ काम करे, निठल्ले न बैठे रहें। अशोक को अच्छी नौकरी मिल जाए और बेटियों को अच्छे पति। सावित्री की इच्छाओं को हम आधुनिक प्रवृत्ति से प्रेरित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा भर नहीं कह सकते, इसके मूल में उसके पारिवारिक दायित्व हैं। वह बड़ी लड़की से दर्द से कहती हैः– ''...यहाँ पर परिवार में सब लोग समझते क्या है, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस–पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।'' सावित्री यदि समझौता करती है और उसमें स्खलन दिखायी देता है तो इसीलिए कि वह परिवार के लिए खटती है। पुरुष दो (सिंघानिया) सावित्री के साथ विचित्र व्यवहार करता है। बार–बार कहता है कि : ''तुम (सावित्री) आओगी ही घर पर।'' सावित्री यह यातना सह जाती है क्योंकि उसे अपने बेटे अशोक के लिए नौकरी चाहिए। अशोक इस पुरुष दो (सिंघानिया) को 'वनमानुष' कहता है, पर माँ के रूप में सावित्री को बेटे–बेटियों के भविष्य की चिन्ता है, मूल्य कुछ भी चकाना पड़े। इस दृष्टि से सावित्री समाज की सहानुभूति की भी अधिकारिणी है।

सावित्री परिवार की चिन्ता में है और जैसे अकेली ही लड़–झगड़ रही है। जब बेटा अशोक कहता है कि ऐसे गलत लोगों को क्यों बुलाती हो? तो सावित्री का उत्तर है, ''इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का जिसके कोई और भी मेरे साथ ढोनेवाला हो सके।'' कितनी चिन्ताएँ लेकर चल रही है सावित्री! निठल्ला पति, विद्रोही सन्तान, वह भी आपस में सौमनस्यरहित। बेटा अशोक छोटी बहिन को पीट देता है क्योंकि वह पड़ोस की लड़की सुरेखा से स्त्री–पुरुष संबंधों पर बात करती है। छोटी लड़की भाई के प्रेम–प्रसंग की चर्चा करती है कि ये अपनी प्रेमिका वर्षा के चक्कर लगाते हैं। परिवार का भार वहन करने वाली नारी के रूप में सावित्री अपने पति महेन्द्रनाथ से पूर्णरुपौण असन्तुष्ट है, वह किसी काम का नहीं। सावित्री में एक गहरा विक्षोभ है कि वह परिवार के लिए अकेली ही पिस रही है, फिर भी उसे टूटने–बिखरने से बचा नहीं पा रही है। परिवार में जैसे सब गैरजिम्मेदार हैं, सारा बोझ उसी पर। बड़े दर्द से सावित्री कहती है : ''मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं, उतने में इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूँगी। मेरे रने से जो कुछ हो सकता था, इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब अन्त है उसका–निश्चित अन्त।''

सावित्री अपने पारिवारिक दायित्वों की ओर ध्यान देती है पर उसके व्यक्तित्व में संग्रंथन, संयोजन सबको साथ लेकर चल सकनेवाले नेतृत्व की कमी हो सकती है। इसके कारण समाजशास्त्रीय हैं और आर्थिक हैं। औद्योगिक, शहरी समाज बन रहे हैं, पारिवारिक इकाइयों का टूटना एक स्वाभाविक परिणति है। पहले टूटते हैं सामन्ती समाज के बने बड़े संयुक्त परिवार, फिर छोटे परिवार भी व्यक्तियों में बंट जाते हैं, छोटी–छोटी आत्मकेन्द्रित इकाइयों में से यहाँ तक कि पति–पत्नी, माता–सन्तान, भाई–बहिन आदि संबंध भी टूट जाते हैं। सावित्री पर और वह इसे निभाने में ही टूटती है। यह बात दूसरी है कि उनके पास 'गोदान' की धनिया का जुझारू ग्राम–व्यक्तित्व न होकर मध्यवर्ग की शहरी मानसिकता है, इसलिए वह भीतर–भीतर टूटती है। इसमें मनोग्रन्थियाँ बनतती हैं, पर जहाँ तक उसके जीवन का प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं कि पारिवारिक दायित्व उसे थकाते हैं। वह अपने बेटे से पीड़ा के साथ कहती है : ''ऐसे में मुझसे नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का, तो

अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूँ रात–दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ, अपनी जगह?''

सावित्री महेन्द्रनाथ का वरण पति के रूप में करती है, पर स्वभाव से दोनों भिन्न–भिन्न दिखायी देते हैं। इनमें कुछ तो अपनी बनावट का रोल है और कुछ परिस्थितियों की भी भूमिका है। कुल मिलाकर जो मानव व्यक्तित्व बनता है, उसमें व्यक्ति एवं समाज दोनों का योग होता है, अर्थात् सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव। सावित्री महेन्द्रनाथ को फिजूल का आदमी समझती है बेकार का, जो निठल्ला बैठा रहता है, कुछ करना ही नहीं चाहता। वह न खुद चलता है और न दूसरों को ही चलने देता है – 'नामुराद मोहरे' की तरह है। पुरुष एक, महेन्द्रनाथ पत्नी से खीझकर कहता है– ''अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ, क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घर–घुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।'' सावित्री महेन्द्रनाथ के साथ रहती तो है, पर मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। सावित्री महेन्द्रनाथ के साथ–साथ रहने के लिए विवश है, जैसे। यह आज के ठण्डे, तनावपूर्ण स्त्री–पुरुष–संबंधों की एक झांकी है।

पति–पत्नी एक दूसरे को सही ढंग से समझना नहीं चाहते। महेन्द्रनाथ कहीं काम पर लगने की कोशिश में है– जुनेजा के पास आता–जाता है, पर सफल नहीं होता। सावित्री धीरे–धीरे मानसिक स्तर पर पति से दूर होती जाती है, उन दोनों में जैसे भावात्मक गायब हो जाते हैं– एक संवादहीन स्थिति। उनमें बातें होती हैं तो जली–कटी, आक्रोष भरी जैसे हर वक्त लड़ झगड़ रहे हों। कुछ संवाद है :

''पुरुष एक : (महेन्द्रनाथ) तुम लड़ना चाहती हो?

स्त्री (सावित्री) : तुम लड़ भी सकते हो इस वक्त, ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से।....वह आदमी (पुरुष दो, सिंघानिया) आयेगा। तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके (सावित्री के) आदमी को कोई न कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं जान–बूझकर ही भेज देती हूँ।

पुरुष एक : वह मुझसे तय करके तो नहीं आता कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूं घर पर!

स्त्री : कह दूंगी, आगे से तय करके आया करे तुमसे। तुम इतने बिजी आदमी हो, पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाय (तीखा व्यंग्य, महेन्द्रनाथ की बेकारी पर)

पुरुष एकः तुम तो बस, आमादा ही रहती हो हर वक्त।

स्पष्ट है कि 'आधे–अधूरे' में मोहन राकेश, सावित्री–महेन्द्रनाथ के माध्यम से स्त्री–पुरुष के तनाव भरे संबंधों पर टिप्पणी करते हैं। उन पति–पत्नी में वह सौमनस्य नहीं जो दाम्पत्य जीवन को, अभावों के बावजूद भी पूर्णता देता है, इसलिए वे स्वतंत्र हैं और घर भी टूट रहा है। सावित्री अपने असन्तोष में कई पुरुषों से बंधती दिखायी देती है। – जुनेजा, जगमोहन और विवष स्थिति में बॉस सिंघानिया भी। सावित्री खोजती क्या है? पूर्ण मनुष्य! पर वह तो कल्पना है, दार्शनिकों की, कवियों की। महेन्द्रनाथ को आधा–अधूरा व्यक्ति करार देते हुए वह कहती है : ''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शखशियत हो?... जबसे मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है।'' जैसे वह आधा–अधूरा आदमी है। एक पत्नी के रूप में सावित्री असन्तुष्ट है, भटकती है, पर उसे परितृप्ति नहीं मिलती। पूर्णत्व की इस मृग–मचीचिका के पीछे दौड़क रवह हताश सी हो गयी है। यह हमारे आज के मध्यवर्गीय स्त्रीपुरुष संबंधों पर तीखी टिप्पणी है।

सावित्री–महेन्द्र के तनावपूर्ण संबंधों का प्रभाव पूरे घर पर पड़ता है। पूरा परिवार जैसे इस तनाव के कारण टूटता चरमराता दिखायी देता है। बेटे अशोक में तीव्र आक्रोश है, वह विद्रोह पर उतारू है, बेकार होकर भी

वर्षा से प्रेम करता है। विचित्र संस्कार हैं उसके–आवारापन के। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के साथ भाग जाती है, फिर पछताती है। छोटी लड़की किन्नी हर चीज से असन्तुष्ट है। भाई–बहन में कोई प्रेम भाव नहीं इसलिए कि परिवार के अभिभावक सावित्री–महेन्द्रनाथ में सौमनस्य नहीं है। बच्चे भी जानते हैं कि माँ के कहाँ–कहाँ, कैसे संबंध हैं? कौन आता–जाता है। परिवेश का प्रभाव परिवार पर पड़ना स्वाभाविक है, इसे राकेश ने नाटक में भलीभाँति दिखाया है। बिन्नी (बड़ी लड़की) एक स्थान पर पुरुष चार (जुनेजा) से कहती हैः ''मैं तो बयान नहीं कर सकती कि कितने–कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।'' वह घर को ''चिड़ियाघर का पिंजड़ा'' कहती है। इस तरह पारिवारिक तनावों के कारण सभी सदस्य असन्तुष्ट हैं – आधे–अधूरे।

मोहन राकेश ने सावित्री का चरित्र मध्यवर्ग से उठाया है और उसे एक परिवार का दायित्व दिया। पति को निठल्ला बनाया और सन्तान भी इस अर्थ में लापरवाह कि माँ में कोई रुचि नहीं। राकेश ने सावित्री को शरीर अथवा यौन स्तर पर भटकती साधारण नारी के रूप में चित्रित नहीं किया, उसे एक व्यक्तित्त्व देने की कोशिश की। एक प्रकार से 'रैशनलाइज' किया है कि सावित्री पूर्णता चाहती है जो मिलना असंभव है। इस दृष्टि से सावित्री की यात्रा 'सही संबंधों की खोज की यात्रा है। वह गृहस्थी की त्रासदी भी झेलती है और अपने मन की यातना भी। वास्तव में सावित्री व्यक्ति नारी नहीं है कि राकेश उसमें 'अषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका अथवा ;लहरों के राजहंस' की सुन्दरी जैसी चारित्रिक रेखाएँ भरने का अधिक सावधान प्रयत्न करते हैं। 'आधे–अधूरे' में उन्होंने सावित्री को एक स्त्री माना है और यह मध्यवर्ग की इन परिस्थितियों की कोई भी स्त्री हो सकती है। विवाह के पूर्व महेन्द्रनाथ उसका प्रिय था, विवाह के अनन्तर ऐसा क्या कुछ बदल गया कि सावित्री का मन उससे तिक्त हो जाता है। उसकी बातों में तिक्तता, कड़वाहट और व्यंग्य है, स्नेह बिल्कुल नहीं। क्यों ये संबंध धीरे–धीरे ठण्डे, व्यर्थ होते गए हैं? राकेश ने उसके लिए सावित्री को घर–गृहस्थी के तनाव से गुजारा है– घर से लेकर बाहर तक।

मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' में एक ओर मध्यवर्ग की त्रासदी दिखाते हैं– पारिवारिक स्तर पर, दूसरी ओर यह भी बताते हैं कि जैसे सबको सही संबंधों की खोज है और उसका सबसे अधिक प्रयत्न सावित्री में है। नाटक के लगभग अन्तिम दौर में पुरुष नं0 चार, जुनेजा आता है और बड़ी लड़की बिन्नी से उसकी काफी बातचीत होती है जिससे सावित्री–महेन्द्र के संबंधों के बिखराव का पता चलता है। जब सावित्री स्वयं रंगमंच पर उपस्थित होती है तो जुनेजा के सामने वह लम्बे वक्तव्य देती है, जहाँ उसकी मानसिकता उजागर होती है। सावित्री कहती है– ''एक आदमी है, घर बसाता है, क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरूरत? अपने अन्दर के किसी उसको एक अधूरापन कह जीलिए उसे.... उसको भर सकने के लिए। इस तरह उसे अपने लिए...अपने में....पूरा होना होता है।'' इस क्रम में, अपने बहुत लम्बे वक्तव्य में सावित्री बोलती चली जाती है लगातार और कहती है कि अपने ढंग से जीना चाहती है, सही संबंधों की तलाश है उसे। उसके शब्द हैं–''वह एक पूरा आदमी चाहती हैं अपने लिए. ... एक.... पूरा आदमी।'' और मोहन राकेश ने चुना है सावित्री को, पूर्णता की तलाश के लिए। सावित्री की भटकन हर उस व्यक्ति की भटकन हो सकती है जिसे पूर्णता की खोज है– यही सावित्री की 'ट्रैजिडी' है।

2.5.4 बिन्नी

बिन्नी सावित्री की बड़ी लड़की है और किन्नी छोटी। बिन्नी भी माँ की तरह पूर्णता की खोज में है। राकेश दिखाते हैं कि बिन्नी उस मनोज के साथ भाग निकलती है जो उसकी मां का प्रेमी था। पर प्रेम और विवाह में अन्तर है विवाह करके बिन्नी भी माँ की तरह असन्तुष्ट है, कहती है, ''एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है. .. ''या ''मन करता है कि आसपास की हर चीज को तोड़–फोड़ डालूँ''। ऐसा क्यों होता है कि जिस व्यक्ति का स्वयं वरण किया, उसी के साथ असंतोष। नागरिक समाज में उपजे एकाकीपन, अलगावपन, अतृप्ति आदि का संकेत मोहन राकेश अपने पात्रों के मायम से करते हैं। बिननी निस्संकोच है, अपना असंतोष माँ से लेकर अजनबी तक के सामने व्यक्त करती है।

यदि केवल यह कह दिया जाये कि बेटी ने माँ के संस्कार पाये हैं, तो अधूरी बात होगी। यह एक पक्ष है। स्थिति यह है कि पारिवारिक परिवेश में माता–पिता में जो तनाव बिन्नी ने देखा है, यदि उस पर उसका प्रभाव है तो यह चेष्टा भी होनी चाहिए कि वह उससे मुक्त भी हो। पर ऐसा नहीं हो पाता। एक क्षण ऐसा भी आता है जब माँ–बेटी, एक–दूसरे को सहानुभूति देती है जैसे उनके जीवनवृत्त एक जैसे हों। दोनों की प्रतिक्रियाओं में कई बार समानता मिल जाती है। माता–पिता दोनों बिन्नी से पूछते हैं कि वह मनोज के साथ खुश तो है न? पहले तो वह टालती है, फिर माँ के सामने खुल जाती है, कहती है– ''शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ, पर अब आकर....अब आकर लगने लगता है कि वह जानना, वह जानना, बिल्कुल जानना नहीं था। इससे बिन्नी के मन का द्वंद्व पता चल पाता है। माँ तरह–तरह के प्रश्न पूछती है, पर बेटी के पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं है। छोटी–छोटी बातों पर तनाव क्यों हो जाता है? फालतूपन क्या? बिन्नी छोटी–मोटी नौकरी करना चाहती है– क्यों? ''कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह (मनोज) अंदर से तिलमिला उठे।'' फिर खीझती है और कुछ नहीं कर पाती।

बिन्नी मध्यवर्ग की नारी है, अपनी विसंगतियों से गुजरते हुए परेशान होती है। माता–पिता के संबंधों को देखकर उसमें भय जागता है। सोचती है– ''क्या यही नियति उसकी भी है?'' और त बवह टूटते स्वरों में माँ से कहती है....''एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है इस घर में, जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है?'' और स्थिति यह है कि इस पूर्णता की तलाश माँ को भी है और बेटी को भी। यहाँ दोनों में समानता है, पर बिन्नी का एक शुभ पक्ष है कि वह मनोज के साथ होकर भी माता–पिता, भाई–बहिन से जुड़ी है। माता–पिता का तनाव उसे खलता है, वह अपने दुःख को व्यक्त करती है, पर कोई कारगर भूमिका निभाने में स्वयं को असमर्थ पाती है। खुद तनाव से गुजरते हुए प्रायः इन्सान दूसरों के सुख–दुःख से अन्यमनस्क हो जाता है। पर बिन्नी ऐसी नहीं है। इसलिए नाटककार राकेश ने उसे नाटक में काफी स्थान दिया है। बड़ी लड़की बिन्नी माँ की सहेली जैसी हो जाती है और इसी तरह का व्यवहार करती है। माँ के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहती है– ''जब से बड़ी हुई हूँ, तभी से देख रही हूँ, तुम सब कुछ सहकर भी रात दिन अपने को इस घर के लिए हलाक करती रही हो।'' पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है, पर चाहने से तनाव नहीं मिट सकते। भाई को ममता देती है और छोटी बहिन को भी। यह बिन्नी के व्यक्तित्त्व की प्रौढ़ता को भी सूचित करता है कि वह बातों को ठीक समझती है।

2.6 आलोचना

2.6.1 कथानक

यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज है और विकृत मूल्यों, भ्रान्तियों एवं दोगली नैतिकता का निर्गम अनावरण, जो उस रिक्तता के कारण है। इसके केन्द्र में पत्नी के वे प्रयत्न हैं, जो वह अपने बिखरते परिवार को बांधने के लिए करती है।

आधे–अधूरे नाटक का विश्लेषण करते हुए उसकी बनावट और भावों पर त्रिपुरारी शर्मा लिखते हैं– 'आधे–अधूरे' नाटक का ढाँचा बहुत सावधानी से बनाया गया है और बहुत ही बारीक विशिष्ट बुनावट है। नाटक के हर वाक्य, हर शब्द में दर्द, क्षोभ और विडम्बना संवारों से झांकती है। नाटक उकसाता भी है और जबरन हमें अपने से जोड़ लेता है। अक्सर मन करता है विरोध करने का, कुछ कहने का, अपनी फटेहाल अधूरी जिन्दगी को पूरा करने का, हाँ शहरी जिन्दगी के रोजमर्रा जीवनयापन और आपसी व्यवहार का इस नाटक से गहरा नाता है। एक स्तर पर नाटक एक ऐसे परिवार के बारे में है जिसकी जड़ें कहीं नही ंजम पाई, यह एक ऐसी संस्कृति के बारे में भी है, मध्यवर्गीय परिवार धीरे–धीरे जिस पर आश्रित हो गए, ऐसी आकांक्षाओं की संस्कृति। इसमें दो गर्माहट व आश्वासन नहीं जो निश्चिंतता से पैदा होती है। अविकासशील समाज को सहारा देनेवाले ढांचे अभी तक तैयार नहीं

हुए। अकेलेपन की भयानकता और बदलाव को यह नाटक पकड़ता है साथ ही एक विशेष परिवर्तन को भी रेखांकित करता है। सावित्री के माँ–बाप का कहीं कोई जिक्र नहीं फिर भी जब कभी बिन्नी अपनी शादीशुदा जिन्दगी से लौटना चाहती है तो उसके पास लौटने की एक जगह है। हालांकि यह वही घर है जिसने उसे ऐसा बनाया, फिर भी यही आसरा भी और आदि बिन्दु भी। टूटता हुआ सा घर फिर भी मजबूत है कि हर किसी को वापस खींचता है। एक मजबूरी और निर्भरता सबको एक दूसरे से बांधती है, वे अपनी कमजोरी से नफरत करते हैं इसलिए एक–दूसरे की आजादी को तोड़ते रहते हैं। एक सुखी परिवार के मिथक को यह नाटक साफ तौर पर तोड़ देता है। स्थिरता का आधार विवाह है, इस बात पर गहरे प्रश्न हैं, तीव्र विवाद है। कई अर्थों में यह आदमियत के अधूरेपन का नाटक है, सीमाहीनता और व्यक्तिवादिता और असहिष्णुता है सब पर काबिज है दूसरों की कमियों के साथ। जबकि खुद अपनी भी कोई गहरी पहचान नहीं। खुशी पैदा करने की नालायकी उतनी ही बड़ी है जितनी कि खुशी पाने की ख्वाहिश, कोशिशों की नाकामयाबी में एक अजब व्यंग्य है लेकिन जिन्दगी के सबक की तरह उसे हर पीढ़ी को उसका तजुर्बा व पहचान खुद ही करनी पड़ती है।

यह नाटक अपने आप में एक पूरा संसार है, एक ऐसा संसार जो व्यक्ति ने रचाया है काले लिबास वाले व्यक्ति ने, जिसके तजुर्बे और जिसकी नज़र का रंग इस संसार पर काबिज है। चूंकि उसने काला चुना है तो यह सारे स्थान में फैल जाता है। इसी में बाकी के पात्र स्थापित किए गए हैं, हालांकि सभी पुरुष इस मानसिकता के प्रतीक हैं, यह औरत सावित्री भी कई औरतों की तरह है उन पुरुषों से व्यवहार करते हुए उनसे रिश्ते कायम करते हुए हर एक पुरुष से पेश आते हुए इस औरत के व्यक्तित्त्व के अलग ही रंग सामने आते हैं, जिससे वो बहुरंगी बन जाती है और उतने ही रंगों में बंट भी जाती है। बीवी, माँ व नौकरीशुदा। वो रूमानियत की भी तलाश करती है और अपनी वकालत भी खुद करती है। इस संसार में वह असह्य है पुरुष से शक्ति प्राप्त करती है, किंतु महेन्द्रनाथ खुद उसकी शक्ति से बंधा है, उसे आश्वासन या शक्ति नहीं दे सकता, जिसकी जरूरत है। वो कमजोर दीखता है लेकिन सावित्री और उस घर पर अपने अधिकारों को वह कायम रखता है, सभी विरोधों के बावजूद उसका दोस्त, उसका वकील, जुनेजा भी उससे हार जाता है। जुनेजा के शब्दों में स्वीकृत नैतिकता, जो सामाजिक रस्म रिवाज से पैदा हुई है, गूंजती है, उसमें दुहरापन है, फिर भी उसका कहना है कि अलग–अलग मुखौटों के नीचे चेहरा एक ही है। इसलिए सावित्री की तलाश बेमानी है। सावित्री नहीं मानती, वह केवल भूमिकाओं से बंधी औरत ही नहीं बल्कि, मानवीय आत्मा है जो अपने सुख की खोज, शांति और सुन्दरता और मंजिल में संतुलन की खोज स्वयं करती है और ऐसा लगता है कि नाटक में होनेवाली घटनाओं का दोष सावित्री का है, लेकिन यह इसीलिए कि वो ही जिम्मेदारी उठाती है औरों से कम भगोड़ी है। हमने उसे परखने की कोशिश की है उसे समझने की, उसकी कुंठाओं, इच्छाओं और टूटन को समझने की कोशिश। इस घर के बच्चे कई अर्थों में संक्रमणकालीन समाज की पैदाइश हैं। अशोक को लगता है कि घर निश्चित रूप से टूटा है। बिन्नी की कोशिश है कि सब कुछ बंधा रह सके, इस प्रक्रिया में वह ऐसी धुरी बन जाती है जिसके इर्द–गिर्द सारी स्थितियाँ घूमती हैं। किन्नी जैसे घर की आत्मा हो, तरसती हुई कि कोई उसे प्यार करे, कोई उसकी तरफ भी ध्यान दे। घर उन सब में प्रमुख है और वह घटनाओं को आकार देता है– यह चक्र चलता रहता है। क्या चलना ही चाहिए? शायद नाटक धीरे से, अस्पष्ट स्वर में यही प्रश्न करता है।

इस नाटक में समकालीन जीवन के अनेक धूप–छां ही चित्र और ढांचे बुने हुए हैं। 'आधे–अधूरे' मोहन राकेश द्वारा एक जीवन्त नाट्य–रूप और हिंदी नाटक–लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम–बिन्दु है। यह उनके स्त्री–पुरुष संबंधों के अन्वेषण की एक कड़ी होते हुए भी यहाँ वह एक तरह की स्वीकृति पर पहुँच गए हैं। स्त्री और पुरुष के बीच परस्पर अनुकूलता नहीं है, और उनके संबंधों में एक बुनियादी संघर्ष सदा बना रहता है। मगर फिर भी इस संघर्ष को समझना और इसके साथ–साथ रहना भी पड़ता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष पूरी तरह कभी अलग नहीं हो सकते और इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

नाटक की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन–सब कुछ ऐसा है, जो बहुत संपूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। मोहन राकेश आधुनिक जीवन में व्याप्त अतृप्ति और महत्वाकांक्षाओं की दौड़ में हारते जीवन की व्यथा कथा कहकर यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि संतोष ही परम सुख है। सब कुछ एक साथ नहीं मिलता, सबको सब कुछ नहीं मिलता लेकिन जो मिला है उसे प्यार से सहेजना ही शांतिपूर्ण जीवन की कुंजी है।

2.6.2 अभिनेयता

नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पांच पृथक भूमिकाएँ निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेन्द्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढांचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है। इसी अनुभव पर बल देने के लिए कुछेक प्रदर्शनों में नाटक की शुरूआत के साथ एक सपाट कमरे में लगे मुखौटे को आलोकित करता था।

'आधे–अधूरे' का कार्य–स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, फाइलें आदि हैं। यह कमरा एक समय साफ–सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गयी है। क्राकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गयी हैं। परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा–तक में उस स्थायी तल्खी की गंध है, जो पाँचों व्यक्तियों के मन में भरी हुई है– ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप...दम घोंटनेवाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।

यह नाटक एक टूटते हुए मध्यवर्गीय परिवार के बारे में है। इसके केन्द्र में है सावित्री, तीन बच्चों की माँ और एक नाकामयाब पुरुष की पत्नी। परिवार को बचाने के लिए सारे उतार–चढ़ाव का सामना करने के साथ–साथ वह सम्पूर्ण पुरुष की भी तलाश में है। उसका सम्पूर्ण मोहभंग और उससे पैदा होने वाली मध्यवर्गीय अस्तित्व के स्तर पर हताशा, एक सुगठित स्थिति में उजागर हुई है जिसमें सावित्री के जीवन में आने वाले चार पुरुषों का अभिनय एक ही अभिनेता से कराने की प्रभावी रंगमंचीय युक्ति का प्रयोग किया गया है। मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' के माध्यम से नाट्य लेखन को कई दिशाएँ प्रदान करते हैं, उदाहरणार्थ नाटकीय संघर्ष पैदा करने के लिये उन्होंने अतिनाटकीयता का सहारा न लेकर एक आम, साधारण विषय–वस्तु का चुनाव किया है। 'आधे–अधूरे' में मोहन राकेश द्वारा नाट्य संरचना की दृष्टि से अपनी लोक परम्परा से लिया गया सूत्रधार का प्रयोग, जो सभी चरित्रों का अभिनय करता है, आधुनिक हिंदी नाट्य लेखन में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस परम्परा का निर्वाह पूरे नाटक की मूल विषय–वस्तु के ताने–बाने में इतने कौशल के साथ किया गया है कि आरोपित न प्रतीत होकर नाटक के कथ्य का एक अनिवार्य अंग बन जाता है।

इस प्रकार 'आधे–अधूरे' की संरचना में सही अर्थों में यथार्थवादी भाषा, विषय–वस्तु, चरित्र–चित्रण, ध्वनियाँ आदि का कुशलता से सामंजस्य किया गया है और इसी जटिल रूप का इस्तेमाल प्रस्तुति में किया गया है। प्रस्तुति में लोक परम्परा को आगे बढ़ाते हुए छः सदस्यों का कोरस भी शामिल किया गया है, जो सूत्रधार का विकसित रूप है को रस चरित्रों की आन्तरिक भाषा को शब्द देता है तथा कई बार मंच निर्देश भी बोलता है। इस प्रकार नाटकीय स्थितियों पर अपनी प्रतिक्रिया तथा प्रबल मनोभावों के प्रति तटस्थ दृष्टि भी प्रदान करता है। अप्रिय एवं कर्कश संगीत का प्रयोग मात्र नाटकीय चरमोत्कर्ष के लिये ही नहीं है, बल्कि चरित्रों के जीवन में व्याप्त कटुता एवं कर्कशता को प्रकट करने के लिए है। संगीत, वातावरण की ध्वनियों से इतना जुड़ा हुआ है कि किसी चरित्र के स्वर से अथवा किसी वस्तु विशेष की आवाज से शुरू या खत्म होता है। कई स्थल पर यथार्थवादी मनोभावनाओं की अतिरंजना के लिये भी शुद्ध ध्वनियों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रस्तुति में घोर यथार्थवादी एवं अतिनाटकीय तत्त्वों का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया गया है जिसके माध्यम से नाटक का मूल कथ्य अपनी पूरी प्रखरता से उजागर होता है, जिसका संबंध एक मध्यवर्गीय परिवार की भयानक स्थिति, उनका झूठा दिखावा और पारिवारिक संबंधों की असफलताओं के सत्य का सामना न करने की नपुंसकता से है। 'आधे–अधूरे' हमारे यथार्थ का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब है तथा नाटककार की असमझौतावादी साफगोई की रोशनी में प्रकाशित चरित्रों में दर्शक अपने–आपको देखकर अन्दर ही अन्दर हिल उठता है।

2.6.3 युग–बोध

प्रत्येक रचनाकार अपने युग से प्रभावित होकर रचनाकर्म करता है। तत्कालीन समाज, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थिति और आवश्यकताएँ उसकी रचना में प्रतिबिम्बित होती है। मोहन राकेश की रचनाओं में भी यह युग बोध अपने रम पर पूरी उत्कृष्टता के साथ दिखाई देता है। वे अपने युग से प्रभावित हैं और युग की नब्ज पकड़ कर चलते हैं। मोहन राकेश की दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म एवं गहन तत्त्वों को पकड़ने की क्षमता रखती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के विकास की प्रक्रिया में हर क्षेत्र विज्ञान तक भौतिकवाद से प्रभावित है। पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर आधुनिक बनने की होड़ में भारतीय समाज का मध्यवर्ग सर्वाधिक पतित हुआ है। मध्यवर्ग वैसे भी हर परिवर्तन के लिए उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए जिम्मेदार माना जाता है। उच्च वर्ग में शामिल होने की उसकी महत्वाकांक्षा उसे पथभ्रष्ट, कुंठित, असंतुष्ट, भटकन एवं एकाकीपन का शाप झेलने के लिए विवश करती है। युवा वर्ग काम करना अशोभनीय मानते हुए सोचता है कि वह काम करता हुआ निम्नवर्गीय लगेगा इसलिए अकर्मण्य हो जाता है। महत्वाकांक्षाएँ उसे कल्पना लोक में घुमाती हैं अतः शिक्षा बुद्धि को अर्थ विकसित करती है। इसलिए वह सुखों की परिभाषा को जान नहीं पाता और अशोक, सावित्री बिन्नी, किन्नी, महेन्द्रनाथ जैसे चरित्रों की सृष्टि होती है। वर्तमान युवा पीढ़ी माता–पिता के प्रति कितनी कटु, अमर्यादित, असभ्य भाषा का प्रयोग कर सकती है यह अशोक के चरित्र से पता चलता है। आत्मनिर्भर स्त्रियों की मानसिकता का पता सावित्री के चरित्र से चलता है। हर मध्यवर्गीय आत्मनिर्भर स्त्री सावित्री नहीं होती, लेकिन समाज में ऐसी असंतुष्ट, भटकती महत्वाकांक्षी स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। मोहन राकेश सात्रि और उसके गृहस्थ जीवन के माध्यम से तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब दिखाते हैं। कलह, अशांति, कटुता, व्यंग्यात्मक संवाद, तनाव, द्वंद्व, असंतुष्टि, पलायनवादी प्रवृत्ति, अकर्मण्यता आदि वर्तमान युग की सर्वाधिक व्याप्त रहने वाली प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें इस नाटक में स्थान मिला है। युग–बोध की अभिव्यक्ति में नाटककार सफल रहा है। नाटक में कथ्य की सफल अभिव्यक्ति है। यह युग के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला नाटक है जिसमें भाषा, ध्वनि, संवाद, पात्र निर्देशन सभी कुछ प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी है। मोहन राकेश ने सामान्य विषय वस्तु के माध्यम से जटिल यथार्थ को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। संपूर्णता की तलाश में भटकती स्त्री सावित्री का चरित्र इस युग का सत्य है। कटुता, तनाव, द्वंद्व के कारण नीरस होते पारिवारिक संबंध, बिखरते गृहस्थ जीवन की झाँकी दिखाने वाला यह नाटक बहुत गहरी बात कह जाता है।

2.6.4 प्रयोगधर्मिता

'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने एक अनूठा प्रयोग यह किया कि एक मुख्य पुरुष को पाँच भूमिकाएँ करने के लिए नियुक्त किया। पहले वह काले सूट वाला सूत्रधार बनता है फिर एक के बाद एक ऊपी वस्त्र बदल–बदल कर रंगमंच पर आता है– महेन्द्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा बनकर। किन्नी, बिन्नी, अशोक की वेशभूषा में परिवर्तन नहीं होता केवल सावित्री दूसरे अंक के लिए साड़ी बदलती है। यह खुले एवं बंद नाट्यगृहों दोनों में प्रभावशाली तरीके से मंचित होने वाला नाटक है। मध्यवर्गीय अभावग्रस्त घर को दिखाने के लिए टूटा–फूटा सामान और फर्नीचर प्रयोग किए गए। पात्रों को बिना मेकअप के प्रस्तुत किया गया। ध्वनि, प्रकाश और संवाद का संयोजन अद्‌भुत था। धाराप्रवाह बोले जाने वाली बातों की गहनता भी छूती है और धारावाहिक रूप से बोले जाने वाले छोटे–छोटे वाक्यों का प्रभाव भी अमिट बना रहता है। मोहन राकेश ने मंच और पात्रों की चमक–दमक के स्थान पर

यथार्थ प्रस्तुति देने का प्रयास किया है जो मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष और अनुभूतियों को जीवंत बनाता है। मोहन राकेश प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। नाटक के कथ्य को आम जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होंने सरल, आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। अतः जहाँ–जहाँ इस नाटक का मंचन हुआ वहाँ उसने सफलता, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त की। हिंदी नाटककार समकालीन स्थितियों और जीवन से जुड़े चरित्रों को लेकर एक सफल नाटक लिख सकता है। यह बात मोहन राकेश ने सिद्ध कर दिखायी। तीन बच्चों की माँ सावित्री का चरित्र दर्शकों को गहराई तक झकझोर देता है। असफल, नाकारा पति महेन्द्रनाथ और सावित्री की भटकन दर्शकों को आम जीवन के बीच ले जाती है। कलकत्ता के श्यामानंद जालान लिखते हैं – ''आधे–अधूरे'' मोहन राकेश द्वारा रचित एक जीवन्त नाट्य रूप और हिंदी नाटक लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम बिंदु है।'' नाटक में उपस्थित दृश्य, जैसे सामानों पर छाई धूल और सावित्री का उसे झाड़ना संकेतात्मक है कि रिश्तों पर गलतफहमी की धुंध पड़ गयी है जिसे सावित्री साफ करने का प्रयास करती है। फटी पत्रिकाएँ, दीमक लगी फाइलें, टूटी प्लेटें, बिखरा सामान, घर में छाई कुंठा, तनाव और उदासी को व्यक्त करते हैं। कलात्मक दृष्टि से देखने वालों ने इसे दोष भी कहा किन्तु यथार्थ को जानने–परखने की दृष्टि से लैस दर्शकों की भीड़ ने राकेश जी की प्रयोगधर्मिता को सराहा। आधे–अधूरे अपने युग की सफलतम कृति है, जिसे दर्शनीयता और पठनीयता दोनों दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है।

2.6.5 भाषा शैली

भाषा और संवाद का विकास इस नाटक में दिखाई देता है। शब्दों का चुनाव और विन्यास। अभिव्यक्ति, बल्कि निश्चित और प्रभावकारी ढंग से सम्प्रेशा की निरंतर ललक। अर्थ और ध्वनि दोनों के माध्यम से न सिर्फ विचार बल्कि भावावेग के सम्प्रेषण की भी। आधे–अधूरे की प्रभावी भाषा उसी खोज की उपलब्धि है, जो 'लहरों के राजहंस' के प्रथम लेखन के बाद शुरू हुई थी और उस नाटक में संशोधित रूप में मौजूद है, और जो 'आधे–अधूरे' में खिलकर आयी है।

'आधे–अधूरे' की बहुत बड़ी विशेषता नाटक की रंगमंच की भाषा के प्रति गहरी समझ है। रंगमंच, दृश्य एवं श्रव्य तत्त्वों का माध्यम है, और इस क्षेत्र में मोहन राकेश नई, जमीन रचते हैं। नाटकीय उपलब्धियों के लिए अमूर्त काव्य आदि साहित्यिक रूढ़ियों का मोह छोड़कर 'आधे–अधूरे' रोजमर्रा के जीवंत यथार्थ को प्रस्तुत करता है। यह यथार्थ अपने आप में जटिल है जो कि सूत्र में बंधना या परिभाषित होना स्वीकार नहीं करता है, किंतु साथ ही अपनी लगातार परिवर्तनशीलता तथा रहस्यात्मक विशेषता के कारण उत्तेजक है। यह अपरिभाषित एवं जटिल यथार्थ केवल इस नाटक के कथ्य का ही नहीं बल्कि इसमें प्रयुक्त भाषा का भी निर्धारण करता प्रतीत होता है। इस प्रकार कथ्य एवं रूप ने एकाकार होकर इस नाटक का रूप जिसके आधार पर इसे आधुनिक यथार्थवादी नाट्य लेखन में 'क्लासिक' की संज्ञा दी जा सकती है।

नाटक की भाषा सादी, सच्ची और एक समान तनाव–भरी है। इसमें एक ओर जहाँ बोलचाल की भाषा की लय और उसकी बुनावट है, वहीं दूसरी ओर सहज प्रवाह एवं स्वतः स्फूर्तता भी है। अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने वाले ध्वनि और मौन के समन्वय की गहरी समझ रखने वाला केवल एक श्रेष्ठ रचनाकार ही वह उपलब्ध कर सकता था, जो राकेश ने किया है। संभवतः मुखर मौन में भी नाटक–तत्त्व अधिक रहता है– संघन संवाद की अपेक्षा अनुच्चरित विचारों में। जैसा कि संगीत में है जो मौन ध्वनि की व्यवस्था का एक भाग होता है। नाटकीय शब्द के लिए राकेश का सम्मोहन उनकी खोज का एक हिस्सा है– अस्तित्त्व के जटिल, गहरे एवं सूक्ष्म स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए और उस भाषा को पकड़ने के लिए जिसमें हमारे समय के विखंडित व्यक्तियों के प्रामाणिक स्वर बोल सकें।

इस नाटक की शक्ति घोर साहित्यिक एवं कृत्रिम भाषावली से मुक्त है। यह वो सहज भाषा है जो हम रोजमर्रा की जिन्दगी में बोलते हैं, किंतु जिसमें हमारे सभी अनकहे भावों की कसमसाहट मौजूद है और प्रकटतः बिना काव्यात्मक होते हुए भी जिसमें काव्य का अनुपम सौन्दर्य है।

संप्रेषणीयता के साथ–साथ भाषा में वनियों की सजगता भी शामिल है। ध्वनियाँ, जैसे अशोक की कैंची की ध्वनि, टिनकटर, कप–प्लेटों की या महेन्द्र के फाईल झटकने की आवाजें आदि जो एक ऐसा वातावरण निर्मित करती हैं जिसमें चरित्रों की आन्तरिकता मुंह से बोलने की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठती है। इन आवाजों और कुछ दृश्य बिम्बों के अतिरिक्त मोहन राकेश ने, अपने मंच–निर्देश के अनुसार कुछ अन्य रोजमर्रा के हाव–भावों का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से किया है– जैसे सावित्री टेबल कवर को खींच कर उसमें अपना मुंह छिपा लेती है या परेशान सी अपने पर्स को टटोलती है। इन भावों में चरित्र की आन्तरिक वेदना एवं खोयापन अपनी पूरी शक्ति एवं समग्रता से प्रकट होता है।

2.7 आधे–अधूरे : आधुनिकता

'आधे–अधूरे' आधुनिक युग के प्रश्नों को लेकर लिख गया सामाजिक बोध का नाटक है और मध्यवर्गीय नारी–पुरुष संबंधों पर प्रकाश डालता है। पारिवारिक परिवेश में नारी की भूमिका क्या है? उसमें असन्तोष क्यों है वह कैसी पूर्णता चाहती है आदि अनेक प्रश्न नाटक में उठते हैं। उत्तर तलाशने की चेष्टा राकेश नहीं करते, उनके पास कोई 'रेडीमेड' समाधान नहीं है। बड़ी लड़की का प्रश्न है–''अंकल, सचमुच कुछ नहीं हो सकता क्या?'' और चतुर्थ पुरुष जुनेजा का उत्तर हैः ''एक दिन के लिए हो सकता है, शायद दो दिन के लिए हो सकता है, पर हमेशा के लिए नहीं।'' मोहन राकेश का मुख्य प्रयोजन पारिवारिक परिवेश में मध्यवर्गीय नारी की स्थिति और नारी–पुरुष संबंधों पर दृष्टि डालना है और इसके लिए उन्होंने सावित्री को चुना। समानान्तर चरित्र के रूप में उसकी बेटी बिन्नी को रखा और दोनों को द्वंद्व से गुजारा। दोनों असन्तुष्ट हैं और दोनों विक्षुब्ध ! तनाव के कोई बड़े कारण हों, ऐसा भी नहीं है, तनाव है सो है। माँ–बेटी के व्यक्तित्त्व की बनावट के कारण भी ऐसा है और पूरा पारिवारिक परिवेश तो है ही।

जीवन में पूर्णता की तलाश वह भी व्यक्ति के माध्यम से, एक निष्फल खोज है। पुरुष चार जुनेजा, नाटक के लगभग अन्त में नायिका सावित्री का विश्लेषण करते हुए उसी से कहता है– ''असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता, तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल–दो साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ छोड़कर जीना। वह उतना कुछ तुम्हें एक साथ किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेषा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। यहाँ राकेश की दृष्टि नारी पक्ष का द्वंद्व उजागर करने में अधिक है, वह भी आज के आधुनिक प्रवृत्ति के सन्दर्भ में। नाटक में नारी का प्रश्न है कि कहाँ है उसका घर, जिसमें वह अपनी निजता को पा सके? कहाँ है वह संबंध, जहाँ वह अपने को सार्थक अनुभव करे? और सबसे बड़ा प्रश्न है कि कहाँ है वह पुरुष जिसमें वह पूर्णता देखे?

आधे–अधूरे की कथा सामायिक है इसलिए यहाँ नारी–पुरुष प्रश्न और भी प्रखरता से उभरे हैं। इसके पूर्व नारी एक निश्चित स्थान था, स्थिर मान्यताएँ थीं और थीं स्त्री के मन में उन मान्यताओं के प्रति दृढ़ आस्था, अटूट विश्वास समय की गति के साथ धारणाएँ बदलीं, आस्था का स्थान विद्रोह ने लिया। नारी–जीवन की मान्यताओं में बदलाव आया और उन आस्थाओं को बन्धनों के रूप में देखा जाने लगा। महत्वाकांक्षाओं में डूबी नारी को नई राह पर चलते–चलते एक असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ा। आरम्भ में तो उस स्वतंत्रता में नारी को कुछ सन्तोष मिला पर शीघ्र ही एक बिखराब आया। सारा ढांचा ही चरमराता प्रतीत होने लगा। पूर्व पश्चिम के जीवन मूल्यों की टकराहट, आर्थिक समस्याएँ, टूटती हुई मान्यताएँ, ढहती आस्था इन सबके मध्य नारी स्वयं अपने को खोने लगी, तनावों और अन्तःसंघर्षों से बिखरने लगी। नायिका सावित्री में यह प्रतिबिम्बित है।

नायिका सावित्री अन्तःसंघर्ष से गुजरती है– एक नारी, पुरुष अनेक। उसकी बड़ी बेटी बिन्नी भी अपने पति मनोज से असन्तुष्ट है। 'आधे–अधूरे' का नायक थका–हारा महेन्द्रनाथ फिर सावित्री के पास लौट आता है।

नाटक में स्थिति यह है कि इस मामले में वर्चस्व नारी का है कि पुरुष बार–बार उसके पास लौटता है, यही उसकी नियति है; जैसे– इन नाटकों का अन्त मार्मिक है। 'आधे–अधूरे' में महेन्द्रनाथ फिर लौटता है लड़खड़ाते पांवों पर, क्योंकि उसे घर की आवश्यकता है और वह सावित्री को छोड़कर कहीं जा नहीं सकता। यह एक ऐसा बन्धन है जिससे चाहकर भी वह मुक्ति नहीं पा सकता। मोहन राकेश का आशय नारी को प्रमुखता देना है, और इस माध्यम से नारी–पुरुष संबंधों का विश्लेषण करना भी।

'आधे–अधूरे' में चार पुरुष हैं: महेन्द्रनाथ सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा। सबके केन्द्र में है सावित्री। नारी और पुरुष के व्यक्तित्व जब इस नाटक में टकराते हैं तो मोहन राकेश नारी को वर्चस्व देते हैं। यहाँ नारी प्रिया है तो संवेदनशील भी है अैर स्त्री है तो प्रभावी, उसका अपना एक व्यक्तित्व है। यह बात दूसरी है कि इसी से द्वंद्व उपजे हैं। यह द्वंद्व, तनाव, अतिरिक्त महतकांक्षा एक साथ थोड़े समय में सब कुछ पा लेने की बेचैनी आधुनिक युग में मिला अभिशाप है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. सावित्री का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
2. महेन्द्रनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. आधे–अधूरे नाटक का परिवेश कैसा है?
4. आधे–अधूरे नाटक में किन भावों की प्रधानता है?
5. आधे–अधूरे नाटक की युवा पीढ़ी पर टिप्पणी कीजिए।

2.8 सारांश

'आधे–अधूरे' महानगरीय आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त बिखराव एवं संत्रास की कहानी है। यह स्त्री–पुरुष के बीच लगाव एवं तनाव, आसक्ति एवं विरक्ति का दस्तावेज है, जो आडंबर हीन, अकृत्रिम शैली में प्रस्तुत किया है। इसका कथानक एक मध्यवर्गीय घर पर केन्द्रित है। इस घर में एक स्त्री सावित्री, उसका पति महेन्द्रनाथ तथा तीन बच्चे बिन्नी और किन्नी बेटियाँ तथा अशोक एक बेटा, रहते हैं। वे सभी सदस्य साथ रहते हुए भी एक–दूसरे से कटे हुए, एक–दूसरे को नापसन्द करते हुए, मन से दूर–दूर हैं। ावित्री इस कथा की धुरी है, मुख्य नायिका है। यह संघर्ष करती हुई, अकेली नौकरी करके परिवार का भरण–पोषण करती हुई सहानुभूति की पात्र लगती है लेकिन वहीं दूसरी ओर अनेक पुरुषों के साथ संबंध स्थापित करती हुई वह चारित्रिक दृष्टि से कमजोर महिला दिखाई देती है। पति महेन्द्रनाथ व्यवसाय में सब कुछ गंवाकर बेरोजगार घर में बैठा रहता है। लड़का अशोक भी नाकारा है। वह न शिक्षा में दिलचस्पी लेता है न व्यवसाय में। एक लड़की से प्रेम करता है और घर की चीजें उठा–उठाकर उसे उपहार में दे देता है। फिल्मी पत्रिकाएँ पढ़ना, तस्वीरें काटकर रखना ओर आवारागर्दी करना यही उसके काम हैं वह माँ के व्यवहार से और पिता से भी असंतुष्ट खीझ से भरा दिखाई देता है। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज नामक युवक के साथ भागकर विवाह कर लेती है। लेकिन विवाह के बाद भी उसका असंतोष और भटकन समाप्त नहीं होती वह बार–बार भागकर मायके आ जाती है। मनोज अच्छा व्यक्ति है लेकिन पहले वह सावित्री का अर्थात् बिन्नी की माँ का प्रेमी या मित्र हुआ करता था। सावित्री के लिए ही घर आता था, सावित्री उस अपने से आयु में छोटे युवक के भीतर भी अपनी संतुष्टि को तलाशती थी। उसे आश्चर्य हुआ ज बवह उसकी बेटी को लेकर भाग गया और फिर उसके साथ विवाह करके गृहस्थी बसा ली। बिन्नी यह नहीं समझती थी कि उसके पति के साथ उसकी माँ के संबंध कैसे थे। सावित्री की अतश्प्त इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के संस्कार बिन्नी में भी हैं। वह भी सदैव बेचैन रहती है। मनोज चूँकि माँ और बेटी दोनों के निकट रहा है इसलिए वह दोनों की

असंतोषी प्रवृत्ति को जानता है। अतः बिन्नी जब भी बहस करती है वह कहता है कि – ''तुम इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हो जो तुम्हें स्वाभाविक नहीं रहने देगी।'' बिन्नी मनोज की बात को सच मानती है, वह जानना चाहती है कि वह ऐसी क्या चीज मेरे भीतर है जो मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती। वह हर काम मनोज की इच्छा के विरूद्ध करना चाहती है ताकि उसे चोट पहुँचा सके। मनोज को दुखी देखकर उसे चोट पहुँचाकर उसे शांति मिलती है। वह नौकरी करना चाहती है क्योंकि मनोज को यह पसंद नहीं है। वह अपने लम्बे बाल कटवाना चाहती है क्योंकि वे मनोज को पसंद हैं। वह सावित्री से पूछती है कि–दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में साँस लें उतना ही ज्यादा वे एक–दूसरे से अजनबी होते जाते हैं क्या?

छोटी बेटी किन्नी स्कूल में पड़ती है। कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। न उसके कपड़ों, मोजे, फीस, पढ़ाई के बारे में सोचता। वह लावारिस की तरह घूमती है। भाई की पत्रिकाएँ पढ़ती है। अपनी पड़ोस की, स्कूल की लड़कियों से प्रेम–संबंधों की बातें करती है। एक तरह से उसका मानसिक और बौद्धिक पतन आरंभ हो गया है। वह चाहती है उसे आम बच्चों की तरह माता–पिता, भाई–बहन का प्यार मिले, सभी उसका ध्यान रखें लेकिन यह अभाव उसे विकृत मनोवृत्ति वाला बना देता है। आर्थिक अभाव के साथ–साथ आपसी सौमनस्य का अभाव उस घर में केवल तनाव और टूटन को जन्म देता है और दिलचस्प बात यह है कि सबके आरोपों का केन्द्र बिन्दु सावित्री बनती है जो घर की एक मात्र कमाने वाली सदस्य है।

महेन्द्रनाथ सावित्री से और अपने परिवार से बहुत प्रेम करता है। लेकिन अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने में वह अक्षम है। उसके पास निर्णय लेने की शक्ति नहीं है, मित्रों की बातों में आकर वह व्यवसायिक क्षेत्र में सब कुछ गंवा बैठा। वह मित्रों द्वारा ही ठगा गया ऐसा सावित्री मानती है। मित्रों की बातों से प्रोत्साहित होकर ह ीवह घर में सावित्री के साथ दुर्व्यवहार करता है। वह नकारा है। गृह स्वामी होतु हुए भी उसकी हैसियत घर में एक रबर के टुकड़े के समान या नौकर के समान है। वह सावित्री की कमाई पर पलता है। सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है और यदा–कदा उन मित्रों के साथ सावित्री के अनैतिक संबंधों की चर्चा करके मन की भड़ास निकालता रहता है। अपने चोट खाए आत्म सम्मान को बचाने के प्रयत्न में कभी–कभी घर छोड़कर चला जाता है और दो–तीन दिन तक नहीं लौटता। सावित्री दिन भर नौकरी करने के बाद शाम को घर लौटती है तो उसे घर का सामान बिखरा हुआ, अस्त–व्यस्त मिलता है, पति और बच्चे भी घर पर उसकी प्रतीक्षा करते नहीं मिलते तो वह आहत होती है कि न बच्चे और न पति उसकी प्रतीक्षा में मिलते हैं। न घर, घर जैसा व्यवस्थित मिलता है। वह थकी हुई अवस्था में बड़बड़ाती जाती है और घर को व्यवस्थित करती है। पति और बेटे को नौकरी मिल सके इसलिए वह अपने बॉस से घनिष्ठ संबंध बनाती है, उसे घर बुलाती है और चाहती है कि घर के लोग उसका स्वागत करें। लेकिन उसके बॉस या पुरुष मित्रों का इस तरह घर आना, सावित्री के साथ घूमना बच्चों को पसंद नहीं है न महेन्द्रनाथ को। वे जुनेजा, सिंघानिया, मनोज आदि के साथ सावित्री के संबंधों को अनैतिक और स्वार्थ प्रेति मानते हैं। अशोक सावित्री से व्यंग्यात्मक वाद–विवाद करता है और स्पष्ट कर देता है कि मेरे लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। इन बड़े–बड़े लोगों के आने से हमें अपमान और हीनता का बोध होता है।

सावित्री आहत स्त्री है। वह बेटे द्वारा की गई उपेक्षा और तिरस्कार से आहत होकर निर्णय लेती है कि वह घर छोड़कर चली जाएगी। इस घर की चिंता नहीं करेगी केवल अपने सुखों और खुशियों का ध्यान रखेगी। सावित्री एक महत्वाकांक्षी स्त्री है। जीवन से उसे अनंत और बहुमुखी अपेक्षाएँ हैं। वह सब कुछ बहुत शीघ्र और एक साथ पा लेना चाहती है। यही कारण है कि महेन्द्रनाथ से विवाह करने के बाद ज बवह उसकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता तो उसे उससे वितृष्णा हो गई। वह भी जुनेजा में सब कुछ ढूंढने लगी, कभी सिंघानिया, कभी जगमोहन और कभी मनोज में। वह अतृप्त स्त्री है। मन की अतृप्ति उसे अमर्यादित बना देती है। पर पुरुष के साथ घूमना, उसके साथ जीवन बिताने की योजना बनाना और स्वयं को कुटिलता पूर्वक परिवार के सुख–समृद्धि का कारण बता कर उसकी आड़ लेना उसकी चारित्रिक दुर्बलता को दिखाता है। महेन्द्रनाथ की बेकारी उसे और भी

कटु बना देती है। एक ओर घर चलाने का असह्य बोझ है और दूसरी ओर जिन्दगी में सब कुछ न पा सकने की तीखी कसक है। सावित्री कहती है कि वह अपनी बची खुची जिन्दगी को एक पूरे, संपूर्ण पुरुष के साथ बिताना चाहती है। लेकिन यह उसकी भूल है क्योंकि वह नहीं जानती कि संपूर्णता की तलाश ही बेमानी है।

नाटक के अंत में जुनेजा और सावित्री के बीच का संवाद न केवल सावित्री को आइना दिखाता है बल्कि सावित्री अपनी बर्बाद गृहस्थी का आरोप जुनेजा पर मढ़ देती है। जुनेजा उससे कहता है कि– तुम्हारी महेन्द्र के संबंध मे जो मानसिकता है कि वह अपूर्ण पुरुष है, गलत है। तुम जिस तरह अतृप्त, असंतुष्ट हो वह सोच और भटकन तुम्हारी प्रवृत्ति है। तुम्हारा विवाह महेन्द्र से न होकर जगमोहन से, शिवजीत से, जुनेजा, सिंघानिया या मनोज किसी से भी होता, अंततः उस पुरुष के संबंध में तुम्हारी यही धारणा होती। क्योंकि तुम सब कुछ एक साथ, एक व्यक्ति में पाना चाहती हो जो सम्भव नहीं है। कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता। हर व्यक्ति को हर चीज एक साथ नहीं मिलती। सब को सब कुछ नहीं मिलता लेकिन तुम सुख, शांति को अपने भीतर न तलाशकर बाहर तलाशती हो इसलिए तुम भटकती रही हो। एक पुरुष से दूसरे पुरुष और दूसरे से तीसरे तक की यात्राओं का कोई अंत नहीं है। महेन्द्रनाथ सब कुछ जानते हुए भी सावित्री के पास लौट आता है। वह घर से प्रेम करता है, एक ऐसा घर जिसमें घर जैसी स्निग्धता, सुरक्षा, शांति के भावों और उष्मा का लोप है। जहाँ बच्चे, माता–पिता का सम्मान नहीं करते। जहाँ पिता बच्चों को पिता जैसी सुरक्षा, प्यार और सुविधाएँ नहीं दे पाता। आलसी और कायर पिता जा केवल बड़बड़ाता है, सिगरेट पीता है और घर से कई–कई दिन गायब रहता है, को बच्चे अपना अभिभावक कैसे मान सकते हैं? माँ पराए पुरुषों के साथ घूमती है और घर का बोझ ढो रही हूँ इस बात को रोना रोती रहती है, बच्चों के जीवन उनके संस्कारों और शिक्षा की ओर उसका ध्यान नही नहीं है। घर के इस तनाव, द्वंद्व और कटुता से भरे वातावरण का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। छोटी लड़की भी बिगड़ती जा रही है। बेटा पढ़ाई छोड़कर आवारागर्दी करता है और बड़ी बेटी ने भागकर विवाह कर लिया। छोटी बेटी की जुबान कैंची की तरह चलती है। वह बदमिजाज होती जाती है। सावित्री को थोड़ी सहानुभूति केवल बड़ी बेटी से मिलती है।

यह घर आंतरिक स्तर पर टूटा हुआ है। हर कोई संबंधों के स्तर पर अधूरा है। संतुष्टि और पूर्णता की तलाश में भटक रहा है। आर्थिक स्थिति इस टूटन के लिए उत्तरदायी तो है ही साथ ही बड़ा हाथ मानसिकता का भी है। सावित्री अपनी कमजोरियों की वकालत करती है। वह स्वयं को सही सिद्ध करती है। महेन्द्रनाथ के लिए उसका कथन है कि–''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो? जब से मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है। वह खुद एक आदमी का आधा–चौथाई भी नहीं है।'' सावित्री महेन्द्रनाथ से कभी संतुष्ट नहीं रही। वह कहती है कि आदमी घर बसाता है अपने अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए लेकिन महेन्द्रनाथ सदा मित्रों के अधूरेपन को भरने की चीज बना रहा। व्यक्तित्त्वहीन पति के कारण उसके अंदर खीझ, ऊब और बेचैनी बढ़ती जाती है तथा वह महेन्द्रनाथ से बेहतर इंसान खोजने के क्रम में कभी जगमोहन से निकटता बढ़ाती है, कभी सिंघानिया से कभी जुनेजा से। महेन्द्रनाथ को सावित्री के विभिन्न पुरुषों से संबंध की जानकारी है अतः समय–समय पर व्यंग्य करके वह अपनी खीझ व्यक्त करता रहता है।

मोहन राकेश ने स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है। महेन्द्रनाथ को दब्बू और नाकारा दिखाया गया है। इस तरह घर की आर्थिक स्थिति की डोर सावित्री के हाथ में है। महानगर हो या गाँव आर्थिक समस्या मानव जीवन की प्रमुख समस्या है जो जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करती है। शिक्षा, रहन–सहन, आचार–विचार सभी इससे प्रभावित होते हैं। आधे–अधूरे के पात्रों को विकृत आचार–विचार वाला बनाने में इस समस्या की मुख्य भूमिका है। यदि महेन्द्रनाथ एक जिम्मेदार कमाऊ पति होता तो सावित्री की नौकरी का उपयोग उसके मनोरंजन और ऐशो–आराम के लिए होता घर चलाने के लिए नहीं। बच्चों की शिक्षा ठीक से हो पाती। बच्चों के भीतर अभावों से

उत्पन्न क्रोध, खीझ और हीनता की भावना नहीं होती। लेकिन पूरा दोष आर्थिक स्थिति को ही नहीं दिया जा सकता, क्योंकि बहुत गरीबी में जीवन बिताने वाले भी प्यार और सुख से रहते देखे जाते हैं। दरअसल महानगरीय आधुनिक सभ्यता की देन है– असीम महत्वाकांक्षाएँ, असंतोष, द्वंद्व, तनाव, कुंठा, अतृप्ति भटकाव। यह सब कुछ सावित्री, बिन्नी, किन्नी, अशोक और महेन्द्र में है। वे सभी असंतुष्ट और अधूरे हैं। सभी सुख और संतुष्टि के लिए गलत रास्तों का प्रयोग कर रहे हैं। कथा पर दृष्टि डालें तो सावित्री का दोष अधिक दिखाई देता है लेकिन दूसरी ओर आर्थिक स्थिति ठीक करने का संघर्ष करने वाली एक मात्र सदस्य वह है जिससे घर का कोई भी सदस्य सहानुभूति नहीं रखता, सिवाय बिन्नी के। अशोक का उस पर आरोप लगाना और कटु संवाद उसकी कृतघ्नता को दर्शाते हैं जो वर्तमान युवा में अधिकतर देखी जा रही है। नाटक में पाश्चात्य संस्कृति का संक्रमण दिखाई देता है, जहाँ सभी अपने–अपने सुख की खोज में भटक रहे हैं। मर्यादाहीन बच्चे, गरिमाहीन माता–पिता और संस्कारहीन घर, जो घर कम धर्मशाला अधिक लगता है। आधुनिक परिवेश को अभिव्यंजित करता यह नाटक मोहन राकेश की अनुपम कृति है जो मन पर अमिट प्रभाव छोड़ता है। तथापि विडम्बना यह है कि नाटक का एक भी पात्र ऐसा नहीं है, जिसका स्वभाव और व्यवहार अनुकरणीय हो। इन पात्रों से केवल यही सीखा जा सकता है कि मनुष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए।

2.9 मुख्य शब्दावली

रुतबा – पदवी

सुर्खरू – कामयाब

शिकंजा – पकड़–गिरफ्त

महसूस – अनुभव करना

2.10 'अपनी प्रगति जाँचिए' के उत्तर

1. सावित्री महेन्द्रनाथ की पत्नी और आधे–अधूरे नाटक की मुख्य नायिका है। यह नौकरी करके परिवार का भरण–पोषण करती है। यह अतृप्त और महत्वाकांक्षी स्त्री है जो पथभ्रष्टता का शिकार होती है।
2. महेन्द्रनाथ आधे–अधूरे का नायक है। सावित्री का पति है। यह बेरोजगार, आलसी, अकर्मण्य पुरुष है जो मित्रों के संकेत पर जीवन संचालित करता है।
3. 'आधे–अधूरे' शहरी परिवेश को लेकर रचा गया है। इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा है।
4. आधे–अधूरे नाटक में अतृप्ति, अति महत्वाकांक्षाओं, स्वार्थ, प्रेम, घृणा, द्वंद्व, तनाव जैसे भावों का आधिक्य है।
5. आधे–अधूरे नाटक में परिवार के तीन बच्चों में से दो युवा हैं– बिन्नी और अशोक। माँ की पथभ्रष्टता और पिता की अकर्मण्यता के कारण ये भी पथ से विचलित हो जाते हैं। अशोक आवारागर्दी करता है। बिन्नी एक लड़के के साथ भागकर विवाह कर लेती है।

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'आधे–अधेर' नाटक के पात्र आधुनिक जीवन–शैली की विसंगतियों का परिच देते हैं। स्पष्ट कीजिए।
2. क्या 'आधे–अधूरे' नाटक में युगबोध की प्रतीति होती है। कैसे?
3. 'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश की प्रयोगधर्मिता पर प्रकाश डालिए।

4. 'आधे–अधूरे' नाटक में मोहन राकेश की नाट्य शिल्प पर प्रकाश डालिए।
5. 'अधे–अधूरे' नाटक की अभिनेयता पर प्रकाश डालिए।
6. चरित्र–चित्रण कीजिए– (1) महेन्द्रनाथ (2) सावित्री (3) अशोक (4) बिन्नी।
7. 'आधे–अधूरे' नाटक के सहायक पात्रों–जुनेजा, सिंघानिया, जगमोहन, किन्नी पर आचार–विचारों पर केंद्रित टिप्पणियाँ लिखिए?
8. 'आधे–अधूरे' नाटक वर्तमान जीवन शैली की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। स्पष्ट कीजिए?
9. 'सावित्री की अतृप्त कामनाएँ आधुनिक स्त्री–जीवन की अतृप्ति और अपूर्णता का एक रूप है। स्पष्ट कीजिए?
10. सवित्री के जीवन, उसकी सोच और मानसिकता के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए?
11. महेन्द्रनाथ की चारित्रिक दुर्बलताओं को स्पष्ट कीजिए।

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

2. डॉ॰ मीना पिंपलापुरे– 'मोहन राकेश का नारी संसार' प्रकाश संस्थान नई दिल्ली, 1987
3. संपादक– नेमीचंद जैन– मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट– दिल्ली–1999
4. मोहन राकेश और उनके नाटक : गिरीश रस्तोगी, लोक भारती, इलाहाबाद।
5. आधुनिक नाटक कामसीताः मोहन राकेश, डॉ0 गोविन्द चातक, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।
6. नाटककार मोहन राकेश : जीवन प्रकाश जोशी, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
7. मोहन राकेश का नाट्य साहित्य : डॉ0 पुष्पा बंसल, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली।